वीर सावरकर

क्रान्तिकारी नेता की साहसपूर्ण जीवनी
और
व्याख्यान

लेखक
श्री प्रेमचन्द्र विद्याभास्कर
सम्पादक 'हिन्दू' नई देहली

प्रकाशक
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य-साहित्य-भवन,
नई सड़क, देहली।

प्रथम संस्करण १०००] जनवरी १९४७ ई० [मूल्य २।) रुपये

प्रकाशक—
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन,
नई सड़क,
देहली।

मुद्रक—
लोकमान्य प्रेस,
पाटौदी हाउस, दरियागंज,
देहली।

❀ सूचीपत्र ❀



पृष्ठ

लेखक के दो शब्द

वीर सावरकर जी की सेवाओं से मुग्ध होकर हिन्दू जनता के हृदयों में अपने नेता के क्रांतिकारी जीवन-चरित्र और विचारों से परिचित होने की प्रबल आकांक्षा जागृत होने लगी। हिन्दी साहित्य में सावरकरजी की ऐसी जीवनी का सर्वथा अभाव देखकर आर्य-साहित्य भवन देहली के अध्यक्ष श्री गोविन्दराम जी ने इस अभाव की पूर्त्ति करने की इच्छा प्रकट की, उसी इच्छा का परिणाम यह पुस्तक आपके हाथों में है।

श्री सावरकर जी का जीवन बाल्यकाल से ही क्रांतिकारी और देश तथा धर्म के प्रेम से ओतप्रोत रहा है। हिन्दू जाति का संगठन और हिन्दू हितों की रक्षा करते हुए पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति करना ही सावरकर जी का मुख्य ध्येय है। यदि पाठकों ने इस जीवन-चरित्र को पढ़कर हिन्दू हितों की रक्षा के भाव अपने हृदयों में जागृत किये तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

—लेखक।

* ओ३म् *

वीर सावरकर

कथा प्रसंग

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ।

संसार में दो प्रकार के पुरुष होते हैं। एक तो वह जो संसार के पीछे चलते हैं और दूसरे वह जो संसार को अपने पीछे चलाते हैं। पहिली प्रकार के तो सभी मनुष्य हैं जो संसार के प्रवाह में वह जाते हैं और जिनके जन्म और मरण से उनके कुछ निकट सम्बन्धियों के अतिरिक्त और कोई परिचित नहीं होता। किन्तु दूसरी प्रकार के मनुष्य बिरले ही होते हैं. जो अपनी अद्भुत शक्ति के द्वारा संसार को अपने पीछे चलाते हैं। ये महापुरुष होते हैं। इनके जन्म और मरण का समस्त देश और जाति पर प्रभाव पड़ता है। जब देश में धर्म का ह्रास होने लगता है और चारों ओर अधर्म का साम्राज्य फैलने लगता है

तो परमात्मा धर्म की रक्षा के लिये किसी महापुरुष को जन्म दिया करता है।

भारत में जब हिन्दुधर्म का ह्रास होने लगा, हिन्दुपति महाराणा प्रताप का रक्त जब उनकी सन्तानों की धमनियों में मन्द गति से प्रवाहित होने लगा, छत्रपति शिवाजी द्वारा संरक्षित हिन्दु जाति जब अपने धर्म और उद्देश्य को भूलने लगी, अद्वितीय विजेता बुन्देलखण्ड-केसरी महाराज छत्रसाल की विजय दुन्दुभि का नाद जब हिन्दुओं के श्रवणपुटों से शान्त हो चुका, गुरु गोविन्दसिंह के आदेश और पांचककके जब हिन्दुजाति के मस्तिष्क से लुप्त होने लगे, बन्दा वैरागी की शुभ भावनायें और आशीर्वाद जब हिन्दुओं के स्मृति-पथ में न रहा और यवनों ने औरंगजेब के शासनकाल के अत्याचार स्मरण करने प्रारम्भ कर दिये, नादिरशाह के युग का अवलोकन किया, अकबर के इतिहास की पुनरावृत्ति की, बाबर के जीवन की कथायें पढ़ी, उनमें यही भावना कार्य करने लगी कि संसार मे इस्लाम तलवार से फैला है, शान्ति, दया और सहिष्णुता का हमारे धर्म में कोई स्थान नहीं, जो मुहम्मद पर ईमान न लाये वह काफिर है, और काफिर को मारना धर्म है, तथा जब ब्रिटिश सरकार भारतवासियों को परतन्त्रता की बेड़ियों मे अधिक जोर से जकड़ने लगी, अपनी शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता का भारत में विस्तार करके हिन्दुओं की शिक्षा, संस्कृति और सभ्यता का नाश करने लगी, हिन्दु जाति से हिन्दुत्व का लोप होने लगा; उस समय देश की

आवश्यकता का अनुभव करके परमात्मा ने वीर मरहठा जाति में चितपावन ब्राह्मण के घर हमारे चरित्र नायक स्वातन्त्र्य वीर विनायक दामोदर सावरकर को जन्म देकर इस भूमि को अलंकृत और देदीप्यमान तथा पवित्र किया।

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर कौन हैं ? वह देशभक्तों में राजकुमार, विद्वानों में महारथी, राजनीति में बर्क, क्रान्तिकारियों में शिरोमणि, सुधारकों में अग्रगण्य और हँसमुख योद्धा हैं, जिन्होंने कभी असफलता देखा नहीं, आत्मसमर्पण का स्वप्न नहीं लिया और सन्धि का विचार भी नहीं किया। सावरकर जी तीन भाई हैं—एक बड़े और एक हमारे वीर से छोटे। तीनों ने केवल एक ही पाठ पढ़ा है और वह है देश के लिये बलिदान। उनके समक्ष इसके लिये कोई भी त्याग महान् नहीं। सावरकर जी का समस्त कुटुम्ब वीर है जिसकी समता संसार के इतिहास में भी नहीं मिल सकती। हमारे चरित्र नायक के कारण ही उनके दोनों भाइयों को भी पर्याप्त कष्ट सहन करने पड़े। इन पृष्ठों में हमारे पाठक देखेंगे कि किस प्रकार देशभक्ति के अपराध में हमारे चरित्र-नायक वीर सावरकर और उनके बड़े भाई को कालेपानी (आजन्म कारावास) का दण्ड भुगतना पड़ा। परन्तु विधि का विधान भी विचित्र है। आज दोनों भाई फिर से मातृभूमि, मातृभाषा और हिन्दू राष्ट्र की सेवा करने के लिए हमारे मध्य में अवस्थित हैं। एक बार फिर आर्य (हिन्दू) जाति अपने राष्ट्र नायक के नेतृत्व में अपना राष्ट्रीय और सामाजिक पथ-प्रशस्त बना रही है।

हमारे चरित्र नायक का पूरा नाम विनायक दामोदर सावरकर है किन्तु हम पूरे नाम का प्रयोग न करके केवल सावरकर का ही प्रयोग करेंगे। महाराष्ट्र मे यह रीति है कि नाम मे पहिले अपना नाम, फिर पिता का नाम और अन्त में कुल का नाम लिखा जाता है। हमारे चरित्रनायक का अपना नाम विनायक, इनके पिता जी का नाम दामोदर और कुल का नाम सावरकर है। सावरकर नाम कैसे प्रचलित हुआ यह भी निर्देश कर देना मनोरंजक ही होगा। गुहागर तहसील के पालशेत गांव में 'सांवरवाड़ो' नाम का एक मुहल्ला था। उस मुहल्ले में सांवर कपास की खेती अधिक होती थी, इसोलिये उस मुहल्ले में रहने वालो का नाम 'सांवरवाड़ी कर' पड़ गया, फिर उसका संक्षेप 'सांवरकर' हो गया और उसी का अपभ्रंश 'सावरकर' है। इसी वंश में हमारे चरित्र नायक ने जन्म लिया।

सावरकर वंश वालों को एक गांव इनाम में मिला था। उसकी कथा इस प्रकार है। कहते हैं कि नानासाहब पेशवा सन् १७५६ में भगूर के पास एक नदी के किनारे छावनी डाले पड़ा था। उसने अपने एक सरदार को आज्ञा दी कि जाओ और हैदराबाद को विजय करके आओ। सरदार चल पड़ा। मार्ग में उसे कुछ निराशा ने आ घेरा और वह वापिस लौटने लगा। फिर उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि सुना है यहां समीप ही गांव में तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहते हैं, उनके आशीर्वाद से अवश्य सफलता होगी। यह विचार कर ही वह उनके पास

गया। धोपावरकर घराने के एक सत्पुरुष ब्राह्मण ने उसे वर दिया कि जाओ, अवश्य सफलता मिलेगी। वह गया और हैदराबाद को परास्त करके लौटा। आकर उसने उसी सत्पुरुष ब्राह्मण की खोज की और उससे प्रार्थना की कि महाराज आप मेरे साथ पूना चलिये, वहां आपको इनाम दिलवाऊंगा। त्यागी सत्पुरुष ने इनाम लेने की अनिच्छा प्रकट की इसलिये भगूर का रहने वाला सावरकर घराने का उनका एक शिष्य उनकी अनुमति से पूना चला गया। वहां उसे श्री नाना साहब पेशवा ने राहुरी नामक गांव इनाम में दिया। सावरकर और धोपावरकर घराने के पूर्वज समुद्रतट से आकर नासिक जिले में रहने लगे थे। उन्होंने परस्पर यह नियम बना लिया था कि हम में से जिस किसी को कोई वस्तु मिले वह दोनों में आधी-आधी बांट ली जावे। इसी नियम के अनुसार वह गांव भी दोनों घरानों में आधा-आधा बँट गया। पेशवा राज्य समाप्त होने के साथ ही इनका गांव भी अंग्रेजी सरकार ने वापिस ले लिया और उसके बदले इन्हें कई वर्ष तक १२००) रुपये वार्षिक मिलते रहे। तदनन्तर जब इनाम कमीशन बैठा तो उसने यह भी देना बन्द कर दिया। फिर कुछ वर्षों के बाद ब्रिटिश सरकार इन दोनों घरानो को २६) रुपये वार्षिक देती रही और फिर वह भी बन्द कर दिया गया।



जन्म और बाल्यकाल

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥

—महाकवि कालिदास ।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी के निवास से पवित्र पंचवटी और दण्डकारण्य के मार्ग में नासिक पड़ता है। यह भी पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसी नासिक जिले की पवित्र भूमि में एक छोटा-सा ग्राम भगूर है। यह ग्राम अपने सावरकर वंश के कारण महाराष्ट्र राज्य में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। इसी ग्राम मे चितपावन ब्राह्मण श्री विनायक दीक्षित रहा करते थे। चितपावन ब्राह्मणों का भी इतिहास बहुत रहस्यमय है। ये विगत दो सौ वर्षों से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध और भारत की स्वतन्त्रता के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं। इसीलिये ब्रिटिश साम्राज्य की आंखो मे चितपावन ब्राह्मण सदा खटकते रहते हैं।

पहिले पेशवा, बाला जी विश्वनाथ चितपावन ब्राह्मण थे। भारत के प्रमुख योद्धा श्री बाजीराव भी चितपावन कुल को ही अलंकृत करते थे। पानीपत के योद्धा ने भी चितपावन ब्राह्मण के

वंश में जन्म लिया था। महान् राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस, सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य संग्राम के नेता नाना साहिब और वासुदेव बलवन्त जिन्होंने ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के विरुद्ध क्रान्ति की, वे भी चितपावन थे। छपेकर बन्धु और रानाडे जिन्होंने अंग्रेज अफ़सरों को मारने के अभियोग में फांसी खाई, ये सब भी पवित्र चितपावन वंश को ही सुशोभित करते थे। श्रीयुत गोखले, रानाडे और लोकमान्य तिलक भी तो इसी स्वनाम धन्य चितपावन वंश में ही उत्पन्न हुए थे। फिर क्या आश्चर्य जो हमारे चरित्र नायक ने भी इसी कुल में जन्म लेकर उसे कृतार्थ किया! आश्चर्य तो तब था यदि इनका जन्म किसी और कुल में हो जाता।

विनायक दीक्षित के दो पुत्र थे। महादेव और दामोदर। दामोदर ने बहुत अधिक शिक्षा प्राप्त न की थी। केवल मैट्रिक तक ही पढ़े थे। उन्हें कविता करने का भी शौक था। आप एक स्कूल में अध्यापक का कार्य करते थे। आपका स्वभाव मिलनसार, सरलस्वभाव और साधु था। अपने पूर्वजों राम और कृष्ण के प्रति आपके हृदय में अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। आप वीरों का सदा सन्मान करते थे। देश के प्रति प्रेम और भक्ति का स्रोत आपके हृदय में उमड़ा रहता था। आपका शरीर बड़ा विशाल, ऊँचे कन्धे, विस्तृत ललाट, चौड़ा वक्षःस्थल और लम्बी बाहुएँ, गौरवर्ण, भव्य मूर्त्ति सबको प्रभावित करने वाली थी। भगूर ग्राम में आपके अतिरिक्त और कोई मैट्रिक तक अंग्रेजी नहीं

पढ़ा था इसलिये और इसलिये भी कि आपके अन्दर अनेक गुण विद्यमान थे, आपका उस समय समाज में बड़ा आदर था। आप बड़े देशभक्त थे तथा इस समय की राजनीति में विशेष भाग लिया करते थे। भगूर के समीप ही कोठूर ग्राम में राधाबाई नाम की एक कन्या थी। उसम भी वीरों के प्रति सन्मान और अपने पूर्वजों—राम तथा कृष्ण के लिये श्रद्धा कार्य करती थी। बालपन से ही यह भी रामायण और महाभारत का पाठ किया करती। आदर्श आर्य गृहिणी के लक्षण इसमें बचपन से ही प्रस्फुटित होने लगे थे। समय आया और १८ वर्ष की आयु के दामोदर और १० वर्ष की आयु वाली राधाबाई का परस्पर सम्बन्ध हो गया। बड़ी निपुणता और योग्यता से दोनों भगूर में ही गृहस्थ जीवन बिताने लगे। दोनो का परस्पर प्रेम और आशायें प्रतिदिन दृढ़ और विस्तृत होने लगी। सम्वत् १९४० वैशाख कृष्णा ६ तदनुसार २८ मई सन् १८८३ ई० सोमवार का शुभ दिवस आया। सर्वत्र शुभ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। इस दिन जब श्रीमती राधाबाई ने पुत्र रत्न को जन्म दिया, तो उस समय दसो दिशायें निर्मल और प्रसन्न दीख रही थीं, वायु मधुर और मन्द होकर वह रही थी, याज्ञिकों द्वारा अग्नि की लपटे भी हव्यपदार्थ को चारों ओर घूम-घूम कर ग्रहण कर रही थी। तात्पर्य यह कि उस समय सब कुछ शुभसूचक मंगल चिन्ह हो रहे थे। ऐसे बालकों का जन्म लोक के अभ्युदय के लिये ही हुआ करता है। बालक के जन्म से घर-घर खुशियां मनाई जाने

लगीं। हर्ष के बाजे बजने लगे। मित्रों से बधाइयां आने लगीं। सगे-सम्बन्धियों को भेंट पहुँचने लगीं। नौकर-चाकरों को इनाम दिये जाने लगे। सर्वत्र हर्ष का साम्राज्य था। बालक दिन-दिन चन्द्रमा की कला की भांति बढ़ने लगा। उसकी सुन्दर मूर्त्ति, गोल-मटोल चेहरा और किसी को देखकर जरा सा मुस्करा देना सबके हृदयों में उसके प्रति अधिक प्रेम-भाव बढ़ा देता था। बालक फूल की तरह रात दिन सगे-सम्बन्धियों के हाथों में रहने लगा और बड़े प्रयत्न से उसका लालन-पालन होने लगा।

सब कुछ था, किन्तु एक बात कुछ खटकती थी। वह यह कि बालक अपनी माता का दूध नही पीता था और बहुधा रोया करता था। बहुत प्रयत्न करने पर भी रोना बन्द न हुआ। एक दिन इसके ताऊ इसे गोद में लेकर बैठे हुए थे। उन्होंने 'यदि तू अपने पूर्वज विनायक दीक्षित का आकार है तो तेरा भी यही नाम रख देंगे, तू चुप होकर दूध पीले" यह कहकर उसके माथे पर राख का टीका लगा दिया। बालक ने तत्काल रोना बन्द कर दिया और वह दूध पीने लगा। सबको महान् आश्चर्य हुआ। इसी घटना के आधार पर इस बालक का नाम भी विनायक ही रख दिया गया।

कहते हैं—ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध भीषण क्रान्ति करने वाले श्री वासुदेव बलवन्त फड़के जिस वर्ष स्वर्गलोक सिधारे उसी वर्ष हमारे इस बालक ने भी जन्म ग्रहण किया। इसलिये सम्भावना अधिक यही है कि उनकी आत्मा ने ही इस बालक के

रूप मे जन्म लिया हो। क्योंकि जो भावनाये वासुदेव बलवन्त फड़के के हृदय में वर्त्तमान थीं, ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध और भारत के प्रति वही भावनाये इस बालक के हृदय में भी तीव्र गति से कार्य कर रही थीं। माता-पिता के लाड़-प्यार और सम्बन्धियों के स्नेह-संवर्धन से बालक अपनी आयु के दिन व्यतीत करने लगा। एक-एक करके वर्ष भी बीतने लगे। माता-पिता बचपन मे ही अपने प्यारे बालक को रामायण की कथा समझाते और महाभारत को सुनाया करते थे। अपने पूर्वजों की वीरता की कहानियां सुन-सुनकर बालक सावरकर के हृदय में भी खून जोश मारने लगा, भावनाये जागृत होने लगीं, संकल्प दृढ़ होने लगा कि मैं भी ऐसा ही वीर बनूँगा। बालक कथाओं मे सुनी हुई वीरतामय घटनाओं का अनुकरण करने लगा। उसी प्रकार धनुप-बाण बना-बनाकर उनसे खेलने लगा। कभी तलवार चलाने के खेल खेलता और कभी धनुष-बाण के। अपने गांव के सब बालकों को इकट्ठा करके सावरकर उनकी दो पार्टियां बना देता और यही दो पार्टियां दो सेनाये कहलातीं। फिर एक सेना दूसरी सेना पर आक्रमण करती, युद्ध करती और कल्पित दुर्ग पर विजय भी प्राप्त कर लेती। इसी प्रकार सेना युद्ध में सावरकर दक्षता प्राप्त करने लगा। धनुष बाण भी हाथ में रहा करता था। किसी वृक्ष पर कोई फूल दीख पड़ा तो उसको अपने बाण से गिरा देने में वह प्रसन्नता का अनुभव करता था और किसी उड़ते हुए पक्षी को बाण से गिराकर तो वह अपनी अ र्व

सफलता समझने लगा था। कभी किसी मस्जिद पर हमला करता और दूसरी विरोधी सेना को परास्त कर देता था। भालों की लड़ाई का भी सावरकर ने अभ्यास किया। कल्पित सेना के सब सैनिकों के पास भाले कहां से आवें ? लिखने के कलम उनके भाले बनते थे और उनसे वे परस्पर युद्ध किया करते थे। पिता जी से राणा प्रताप, शिवाजी आदि वीरों के वीरतापूर्ण कार्यो की कथा सुनते रहने से सावरकर का हृदय भी इन भावनाओं से भर गया और बाल्यावस्था से ही उनका ध्यान देश तथा धर्म की ओर खिंच गया। प्रतिभाशाली तो इतना था कि १० वर्ष की आयु में ही उसने मराठी मे कवितायें करनी आरम्भ कर दीं और पूना के प्रसिद्ध समाचारपत्र भी उन्हें प्रकाशित करने लगे। सन् १८६३-६५ में समस्त देश में हिन्दु-मुस्लिम दंगे होते रहे। महाराष्ट्र में भी इस अग्नि की ज्वालायें धधकीं। बम्बई और पूना आदि में भीषण दंगे और उत्पात होने लगे। समाचार-पत्रों में इन समाचारों को पढ़कर सावरकर के हृदय में जातीय प्रेम और देश सेवा के भाव और भी अधिक भर गये।

सन् १८६२ में जब विनायक की आयु केवल ६ वर्ष की थी, माता का महामारी से देहान्त हो गया। घर में और कोई दूसरी औरत न थी। सावरकर आदि ५ भाई और २ बहिनें हुई थी। २ भाई और १ बहिन बहुत छोटी आयु में ही मर चुके थे। अब ३ भाई और १ बहिन थे। इन सबके पालन-पोषण का भार पिता के कन्धों पर आ पड़ा। पिता जी ने यह समस्त प्रबन्ध इस

निपुणता से किया कि बालकों को माता की मृत्यु की घटना का ध्यान भी न रहा। पिता जी ने घर की दुर्गा की पूजा का भार सावरकर को सौंप रखा था। इसने सुना था कि दुर्गा ने शिवाजी की बहुत सहायता की थी, इसलिये वह दुर्गा के सामने घण्टों घुटने टेक कर प्रार्थना किया करता। इस प्रकार विनायक के हृदय मे देश तथा धर्म के प्रति प्रेम की भावना दिनोदिन अधिक प्रबल होती गई। महाराष्ट्र में सन् १८९७ में जो लहर चली उसका सारे भारतवर्ष में भारी प्रभाव पड़ा। पूना के अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन, गणेशपूजा और शिवाजी-महोत्सव आदि ने ऐसा जोर पकड़ा कि सारे महाराष्ट्र में क्रान्ति मच गई। १४ वर्ष का बालक विनायक सावरकर इन सब बातों को समाचारपत्रो में बड़े ध्यान से पढ़ता और इन पर गम्भीरता से विचार किया करता। उन दिनों सावरकर का मुख्य कार्य यही हो गया था कि स्वयं डाकघर जाकर वहां से समाचार-पत्र लाना, उसे स्वयं पढ़ना और अपने साथियों को पढ़कर सुनाना और समझाना। इन गम्भीर विषयों पर वह अपने अध्यापकों और अपने से बड़ो के साथ वादविवाद भी किया करता था।

पूना में प्लेग फैल गई। जनता त्राहि त्राहि पुकारने लगी। अंग्रेज अफसरो की ओर से उन दिनों अव्यवस्था रही। इनके प्रति जनता मे विक्षोभ उत्पन्न हो गया। सम्पूर्ण देश में महारानी विक्टोरिया की 'डाइमण्ड जुबिली' मनाई जा रही थी, सब ओर प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती थी। उसी दिन उन अंग्रेज

अफसरों का वध हो गया। धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं। नाथू बन्धुओं को निर्वासन का दण्ड मिल गया; श्री लोकमान्य तिलक भी पकड़े गये और उन अफसरों को मारने वाले छपेकर भाई भी पकड़ कर फांसी पर चढ़ा दिये गये। यह घटना थी जिसने सावरकर के हृदय में अपना गहरा स्थान कर लिया। अब क्या था, सावरकर ने अपने विचारों का प्रचार अधिक वेग से करना आरम्भ कर दिया। अपने गांव में स्कूल के विद्यार्थियों को इकट्ठा करके उनमें अधिक जोश उत्पन्न करने के लिये शिवाजी महोत्सव और गणेश पूजा मनानी आरम्भ कर दी। सावरकर अपने साथियों में अधिक जागृति उत्पन्न करने के लिये वीरतापूर्ण कवितायें बनाने लगा। सावरकर ने नासिक में एक 'मित्र-मेला' नाम की संस्था स्थापित की। उसमें वीरों की कवितायें गाई और पढ़ी जाती थीं; शिवाजी महोत्सव और गणेशपूजा मनाई जाती थी। यह संस्था अल्पकाल में ही इतनी बढ़ गई कि सरकार को भी इसकी विशेष देख-भाल करने के लिये आज्ञा निकालनी पड़ी। इस संस्था ने बड़े-बड़े वक्ता तथा देशभक्त उत्पन्न किये जो अपनी मातृभूमि की सेवा के निमित्त हँसते-हँसते बलिवेदी पर चढ़ गये। सावरकर का प्रभाव नासिक में इस समय इतना बढ़ गया कि उस समय के बड़े-बड़े नेता भी इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे। सावरकर ने बड़ी-बड़ी सभाओं में व्याख्यान देना शुरू कर दिया, जनता इनके व्याख्यानों को ध्यान से सुना करती थी।

बालक सावरकर के हृदय में पूजा तथा कथा और स्तोत्र आदि पर अगाध विश्वास था। एक बार, कहते हैं कि, इनकी बहिन के कान की बाली खो गई, सब तरफ ढूंढ़ ली गई पर न मिली। सावरकर से पूछा तो इसने देवी का ध्यान करके बताया कि घर के अमुक आले में पड़ी है, देखा तो वहीं मिली। सावरकर की प्रतिभा और सूझ भी बालपन में अनोखी थी। एक बार सावरकर ने कुछ अपराध कर दिया, इस पर पिता जी क्रुद्ध हो गये और इसको पीटने के लिये ढूँढ़ने लगे। बड़े भाई ने यह बात उन्हें बता दी। सावरकर तत्काल पास ही रखी एक लोहे की तिजोरी में घुस गया और इस प्रकार अपने पिता जी के क्रोध का लक्ष्य होने से बचा। बाद में पिता जी ने पूछा कि कहां गया था, तो उसके ठीक-ठीक बता देने पर उसकी अनोखी सूझ से पिता जी प्रसन्न हुए और उसे दण्ड न दिया।



विद्याध्ययन

धियः समग्रैः स गुणैरुदारधीः
क्रमाच्चतस्रश्चतुरर्णवोपमैः।
ततार विद्याः पवनातिपातिभि–
र्दिशोहरिद्भिर्हरितामिवेश्वरः॥

—रघुवंश महाकाव्यम्।

बालक सावरकर ने ६ वर्ष की आयु में शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। यों तो यह इससे भी पहिले अपने माता-पिता से मौखिक शिक्षा ग्रहण करता रहा। रामायण-महाभारत की कथायें और वीर पुरुषों की गाथायें सुनता रहा किन्तु ६ सितम्बर सन् १८८६ में इसने भारत में ही गुरुमुख से विद्याध्ययन आरम्भ किया। सातवें वर्ष में बालक का मौञ्जीबन्धन भी हो गया। सावरकर प्रतिदिन अपनी माता जी के चरण-स्पर्श और उनसे आज्ञा प्राप्त करके पढ़ने जाया करता था। एक दिन किसी बात से यह माता जी से रूठ गया इसलिये बिना चरण-स्पर्श और आज्ञा प्राप्त किये स्कूल चला गया। वहां जाकर उसने सोचा कि आज मैंने महान् अपराध किया जो माता जी को नमस्कार करके नही आया। यह विचार उत्पन्न होते ही सावरकर वापिस घर आया और माता जी से अपने अपराध की क्षमा याचना की। स्कूल में अपनी अनुपम बुद्धि और अद्भुत प्रतिभा के कारण सावरकर गुरुजनों का स्नेह-भाजन हो गया। सहाध्यायी इसे आदर से देखने लगे। दिन-दिन सावरकर विद्या में उन्नति करता गया। अपनी योग्यता, परिश्रम और बुद्धि के कारण सावरकर ने अपने को विद्या का पात्र सिद्ध कर दिया इसलिये गुरुजन भी इसे प्रेम से विद्या पढ़ाने लगे। क्योंकि सुपात्र में किया गया परिश्रम ही सफल होता है। जिस प्रकार अच्छी तरह जोती हुई भूमि में बोया हुआ बीज अच्छा फल देता है उसी प्रकार सावरकर को दी गई विद्या भी अपना चमत्कार दिखाने लगी। स्कूल में

सावरकर को पुस्तकों की शिक्षा तो गुरु देते थे और देशभक्ति तथा धर्म-प्रेम की शिक्षा वह अपने माता-पिता द्वारा बचपन में सुनाई हुई कथाओं के प्रभाव से लेता था। इसकी अध्ययनशीलता के कारण शीघ्र ही स्कूल में इसका आदर होने लगा। गुरुजन और विद्यार्थी सभी इसे विद्वान, देशभक्त तथा एक अच्छा वक्ता समझने लगे।

सन् १६०१ ई० मे सावरकर ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। कालिज की शिक्षा प्राप्त करने के लिये इन्हें पूना जाना पड़ा। वहां जाकर इन्होंने फरगूसन कालिज मे प्रवेश किया। चार वर्ष तक सावरकर पूना के इसी कालिज मे अध्ययन करते रहे। सन् १६०५ ई० मे बी० ए० की परीक्षा होने वाली थी। सावरकर ने इन्ही दिनो विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का आन्दोलन बड़े जोर से चलाया और एक बहुत बड़ी विदेशी वस्त्रो की होली भी जलाई। इस घटना से सारे देश मे सनसनी फैल गई। कई सप्ताह तक इसी विषय पर समाचारपत्रों मे आलोचन-प्रत्यालोचन होता रहा। अतः सरकार की अप्रसन्नता के भय से कालिज के अधिकारियों ने सावरकर को दण्ड देने का निश्चय किया। फल-स्वरूप उन पर १०) जुर्माना हुआ और उन्हें कालिज से निकाल दिया गया। इधर बी० ए० की परीक्षा सिर पर और उधर कालिज से निष्कासन! ईश्वर भी सबका सहायक होता है। बम्बई विश्वविद्यालय ने सावरकर को परीक्षा में बैठने की आज्ञा दे दी। जुर्माना देने के लिये इनके भक्तों ने चन्दा करके

आवश्यकता से अधिक रुपया इकट्ठा कर लिया। सावरकर ने जुर्माने से बचा हुआ रुपया अन्य संस्थाओं को दे दिया। अपने आन्दोलनों के कारण सावरकर ने परीक्षा की कुछ तैयारी न की थी और परीक्षा पास थी। किसी को आशा न थी कि ये उत्तीर्ण हो जायेंगे। विरोधी इनकी असफलता की प्रतीक्षा में थे कि अच्छा अवसर हाथ लगेगा किन्तु परमेश्वर की कृपा से सावरकर परीक्षा में भली भांति उत्तीर्ण हो गये और विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी।

श्री लोकमान्य तिलक और पं० पराजपे की कृपा से सावरकर जी को पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा की विदेश जाकर कानून अध्ययन करने की छात्रवृत्ति प्राप्त हो गई। सावरकर जी कानून पढ़ने के लिये इंगलैण्ड गये और वहां बड़ी योग्यता के साथ सारा पाठ्यविषय अध्ययन कर लिया। इंगलैण्ड में भी सावरकर जी के हृदय में देश प्रेम की भावनायें हिलोर मार रही थीं और वे बहुत जोर के साथ अपने आन्दोलन चलाते रहे। सावरकर जी की बैरिस्टरी की अवधि भी समाप्त हो गई। सभी परीक्षाओं में सावरकर जी उत्तीर्ण भी हो गये। पर, अधिकारियों ने बैरिस्टरी की डिग्री देने से इन्कार कर दिया और कहा कि यदि तुम क्रान्तिकारी कार्य छोड़ दो तो तुम्हें 'बार' की डिग्री मिल जायेगी। एक देशभक्त अपने मार्ग से कब विचलित हो सकता था ? सावरकर जी ने स्पष्ट इनकार कर दिया और अपने कार्य में लगे रहे। सावरकर जी को बैरिस्टरी की डिग्री न दी गई।

इसके बाद सावरकर जी ने अण्डमान और रत्नागिरी की जेलों में नजरबन्द रहकर २६ वर्षों तक निरन्तर देशभक्ति और जाति-प्रेम की अपार शिक्षा ग्रहण की।



कालिज के दिन

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवाः
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम्।
सुधां विना न प्रययुर्विरामे
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः॥
—भर्तृहरिः

नासिक से सन् १६०१ में सावरकर जी ने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उसी वर्ष आप बीमार भी हो गये। बीमारी के दिनों में आपको चिन्ता हुई कि मैं मैट्रिक से आगे की शिक्षा कैसे प्राप्त करूँगा क्योंकि इतना पैसा पास नहीं कि कालिज का खर्च सहन कर सकें। इनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर ने कहा कि यदि तुम भाऊराव चिपलूणकर की लड़की से विवाह कर लो तो वे तुम्हारी सारी शिक्षा का व्यय उठा सकते हैं, फलतः सावरकर जी ने उनकी कन्या से विवाह करना स्वीकार कर लिया और उन्होंने ही इनकी शिक्षा का व्यय उठाया।

सावरकर जो उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये सन् १६०२ में पूना के फर्गुसन कालिज में प्रविष्ट हुए। इस कालिज के प्रिंसिपल सर रघुनाथ परांजपे थे। आप गणित के विशेषज्ञ थे। सावरकर जी पूना आकर विशेष प्रसन्न इसलिये हुए कि उन्हें यहां अपने विचारो और कार्यों के प्रचार और विस्तार का बहुत विस्तृत क्षेत्र मिल गया था। आपने सोच लिया कि यदि कालिज के विद्यार्थियों में मै अपने विचार भर दूँगा तो वे यहां से जा-जाकर अपने-अपने नगरों में उनका प्रचार करेंगे। आपने सर्वप्रथम कालिज के विद्यार्थियों में ही अपना कार्य प्रारम्भ किया और अपनी विशेष योग्यता, वक्तृता और लेखन आदि के कारण आप अल्प-काल में ही न केवल कालिज में अपितु सारे शहर में प्रसिद्ध हो गये। इन्हें पूना में श्री लोकमान्य तिलक और श्री शिवराम महादेव परांजपे आदि मिले। उनके मिलने से इन्हें अपने कार्य में और भी अधिक उत्तेजना मिली। सायंकाल कालिज के अन्य विद्यार्थी जब खेलें खेलते, मनोरंजन करते और सैर-सपाटे में समय बिताते तो सावरकर जी और उनके साथी कालिज से कुछ दूर पर एकत्र होकर अपने आन्दोलन के प्रचार के लिये भिन्न-भिन्न उपाय सोचा करते थे।

आप प्रबन्ध कला में भी बहुत निपुण थे। कालिज के छात्रों के भोजन की व्यवस्था के लिये कोई विद्यार्थी ही नियुक्त हुआ करता था, किन्तु जब से सावरकर जी कालिज में आये तब से इस व्यवस्था के लिये वे ही सर्वोत्तम समझे गये। 'आप रात-दिन

सभा-सोसाइटी तथा आन्दोलन और अपने विचारो के प्रचार में ही रहा करते थे किन्तु फिर भी व्यायाम नित्य करते थे। पहाडी पर दौड़ लगाना, दण्ड बैठक निकालना और फुटवाल आदि खेलना आपके व्यायाम के साधन थे। दिन भर तो आपको इन कार्यों से अवकाश न मिलता इस कारण आप रात में ही पढ़ने का कार्य करते थे। आपके साथी और इनके विचारो से प्रभावित होने वाले छात्र इनके कमरे में प्रायः रहा ही करते थे, इसलिये सब इनके कमरे को 'सावरकर-कैम्प' के नाम से पुकारने लगे।

पूना के डेक्कन कालिज मे श्री खापर्डे उन्ही दिनो पढ़ा करते थे। सावरकर जी की और उनकी परस्पर मित्रता हो गई। सावरकर जी अपने फर्गुसन कालिज के सामने एक छोटी सी पहाड़ी पर रात को मीटिंग किया करते और उसमें अपने विचारो का प्रचार और उनके प्रचार करने के उपाय सोचा करते। कभी-कभी यह मीटिंग डेक्कन कालिज मे भी हुआ करती थी। सन १९०२ मे जिस वर्ष आप कालिज मे आये उसी वर्ष आपने अपने विचारो का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रचार करने के लिये एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका निकाली। कालिज में जितने भी उत्सवादि होते उन सब मे सावरकर जी ही सबमे अग्रणी रहा करते थे। आपको नाटक आदि खेलने का भी बहुत शौक था। एक बार कालिज मे आह्निका नामक नाटक खेला गया, उसमें आपने भूमिका में भाग लिया और एक बार शेक्सपीयर के अथेलो ड्रामा के अनुवाद झुंझारराव नाटक मे आप झुंझारराव

बने थे। सावरकर जी को इतिहास में अधिक रुचि थी, इसलिये आप अपने कालिज के पाठ्यविषय से भी अधिक इतिहास का ज्ञान रखते थे। एक बार कालिज में इटली के इतिहास पर वाद-विवाद हुआ। उसमें सावरकर जी ने भी पूरा-पूरा भाग लिया। वाद-विवाद के प्रधान प्रिंसिपल राजपांडे थे। सावरकर जी ने अपने भाषण में इटली की पूर्वकालीन और वर्त्तमानकालीन राजनीति की बड़े ओजस्वी शब्दों में युक्ति और तर्क से पूर्ण तुलना की थी। आपका भाषण सुनकर प्रिंसिपल साहब हैरान रह गये कि सावरकर को इतना ज्ञान कैसे? इतिहास का इतना ज्ञान तो हमें भी नहीं है। प्रिंसिपल राजपाडे ने सावरकर जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनसे प्रश्न किया कि तुम्हें इतना ज्ञान कहां से हुआ? सावरकर जी बोले मेरा रात दिन काम ही यही है। मैं इतिहास और राजनीति पढ़ता हूं उनपर मनन करता हूं और अपने विचारों का प्रचार करता हूं। कालिज के विद्यार्थियों में समय-समय पर भाषण, वाद-विवाद और निबन्ध आदि में प्रतियोगितायें भी होती रहती थीं, उनमें सावरकर जी विजयी होते और पारितोषिक प्राप्त किया करते थे। सावरकर जी अपने लेख और कवितायें महाराष्ट्र के काल, केसरी, भाला, युगान्तर, विहारी और सन्ध्या आदि पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा करते थे। आप मेजिनी और गेरीबाल्डी के समान ही भारत में भी क्रान्ति करने के उपाय सोचते रहा करते थे। अपने विचारों का प्रचार करने के लिये सावरकर जी इधर-उधर के ग्रामों और नगरों में

भी समय-समय पर जाते रहते थे।

सन् १९०३ में पूना मे बड़ी भारी प्लेग फैली। उसमें आपने निर्भीक भाव से रोगियों की सेवा की। सन् १९०५ और १९०६ में विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार का आन्दोलन बड़े वेग से चला। इस आन्दोलन में सावरकर-पार्टी ने अवर्णनोय परिश्रम और कार्य किया। जिसका उल्लेख हम पहिले भी कर आये हैं। पूना, नासिक तथा अन्य स्थानो में इन लोगों ने विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार का कार्य इतने जोर से किया कि सरकार को भी इस पार्टी से भय मालूम होने लगा। सावरकर ने विदेशी वस्तुओं की एक होली जलाने का विचार प्रकट किया। सभी लोगों ने यहां तक कि लोकमान्य तिलक महाराज ने भी इस कार्य की सफलता मे अविश्वास प्रकट किया। परन्तु सावरकर जी और उनके साथी कब मानने वाले थे। धीर मनुष्यो की यही पहिचान है, वे जो बात एक बार निश्चय कर लेते है उससे कभी विचलित नहीं हुआ करते। इन लोगो ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का निश्चय कर ही लिया। भारत में सबसे प्रथम यही होली थी, इससे पूर्व कभी भी नही जलाई गई। पूना में दो सभायें करने के बाद सावरकर जी ने बड़े मार्मिक और ओजस्वी शब्दो मे जनता से विदेशी वस्त्र जलाने के लिये फेंक देने का आग्रह किया। उनके शब्दो ने जादू का-सा प्रभाव दिखाया और देखते ही देखते सैकड़ो मनुष्यो ने अपने-अपने विदेशी वस्त्र, कोट, कमीज और टोपी आदि फेंकना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही

समय में विदेशी वस्त्रों का एक बड़ा ढेर लग गया और वे सारे कपड़े कार पर लादकर शहर से बाहर ले जाये गये। श्री तिलक जी महाराज, जिन्हें इस होली की सफलता पर सन्देह था, उन्हीं के नेतृत्व में उन विदेशी कपड़ों की यह होली जलाई गई। तदुपरान्त कुछ लोगों के व्याख्यान हुए। सावरकर जी का भी एक व्याख्यान हुआ जो अत्यन्त प्रभावशाली था।

इस घटना से सारे देश में सनसनी फैल जाना स्वाभाविक ही था। समाचारपत्रों में कई सप्ताहों तक इसी विषय पर विचार-विमर्श होते रहे, आलोचनायें और प्रत्यालोचनायें निकलती रही। इधर जनता के हृदयों में तो उत्साह और जोश था, वह अपने एक होनहार युवक नेता को पाकर प्रसन्न थी, किन्तु उधर कालिज के अधिकारियों के हृदयों में सरकार के भय ने स्थान कर लिया। परिणाम यह हुआ कि अधिकारियों ने सावरकर जी को कालिज से निकालने का निश्चय कर लिया और उसी के अनुसार उन पर १०) रुपये का जुर्माना हुआ और उन्हें कालिज से निकाल दिया गया। सावरकर जी के हृदय में इससे कुछ भी घबराहट न उत्पन्न हुई; यदि कुछ हुआ तो इतना ही कि उस समय बी० ए० की परीक्षा निकट थी। अधिकारियों को ऐसे समय कालिज से निकालना न चाहिये था। जुर्माना क्या, उससे भी अधिक रुपया जनता ने एकत्र कर दिया और सावरकर जी ने जुर्माने से बचा हुआ रुपया विभिन्न संस्थाओं को दे दिया। इधर ईश्वर ने भी उनकी सहायता की और बम्बई की

यूनिवर्सिटी ने उन्हे परीक्षा में बैठने की आज्ञा दे दी। कालिज के छात्रावास से निकाल दिये जाने पर सावरकर जी अपने सम्बन्धियों के पास रहने लगे थे। परीक्षा पास है किन्तु सावरकर जी की तैयारी कुछ नहीं। अपने विचारों के प्रचार के कारण इतना समय न मिल सका कि पाठ्यक्रम का भलीभांति अध्ययन कर सकते। इनके पास होने मे सबको सन्देह था, किन्तु परमात्मा की कृपा से उत्तीर्ण हो गये।

जिन प्रिंसिपल पराजपे ने सावरकर जी को कालिज से निकाला था, उन्ही ने बाद मे उनकी ६०वी वर्षगांठ पर उनको भेंट की जाने वाली दो लाख रुपये की थैली में एक सौ रुपये की राशि भेंट की। मानो यह जुर्माने के दस रुपये दस गुणे होकर वापिस आये हो।

सन १६०५ मे सावरकर जी ने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। तत्पश्चात् तुरन्त ही उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थापित की हुई अपनी सब संस्थाओं को एक सूत्र मे पिरोकर संगठित करने के लिये एक गुप्त सभा बुलाई। सारे महाराष्ट्र से लगभग दो सौ सज्जन उस सभा में सम्मिलित हुए थे। इन लोगों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये इस कार्य का प्रचार सम्पूर्ण देश में करने का निश्चय किया इसलिये उन्होंने अपनी इस संस्था का नाम अभिनव भारत' रखा। इसके अनन्तर सावरकर जी ने स्थान-स्थान पर जाकर व्याख्यान देने और प्रचार करने का कार्यक्रम बनाया। सब स्थानों का कार्यक्रम सावरकर जी के

बनाये हुए तथा अन्य वीरतापूर्ण गानों के साथ प्रारम्भ हुआ करता था। परिणाम जो होना था वही हुआ। सारे महाराष्ट्र में धूम मच गई और एक प्रकार की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। ब्रिटिश सरकार की भी आंख पलट गई। सावरकर जी को क्रांतिकारी राजद्रोही समझ लिया गया और इनके गिरफ्तार करने का विचार होने लगा।

इधर सरकार यह विचार कर ही रही थी कि उधर तिलक जी महाराज और पं० परांजपे की कृपा से, सावरकर जी को पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा की विदेश जाकर कानून अध्ययन करने की छात्रवृत्ति प्राप्त हो गई। सरकार ने भी सोचा कि इंगलैण्ड जाकर सावरकर जी का मस्तिष्क ठीक हो जायेगा, इसलिये उनकी गिरफ्तारी का विचार सरकार ने छोड़ दिया। किन्तु जिसके हृदय में एक आग लग चुकी है क्या वह शान्त हो सकती थी ? बम्बई में जिस समय सावरकर जी अपनी इंगलैंड जाने की तैयारी कर रहे थे, उस समय भी उन्होंने बम्बई में 'अभिनव भारत' का एक केन्द्र स्थापित कर दिया। बम्बई के विल्सन. एलफिन्स्टन तथा अन्य कालिजों से बहुत से विद्यार्थियों को उस संस्था में भरती कर दी। इंगलैण्ड जाने से पहिले सावरकर जी ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि जिससे उनके चले जाने पर भी 'अभिनव भारत' उसी प्रकार उन्नति करता रहा।

इंगलैण्ड जाने के लिये सावरकर जी को उनके श्वसुर श्री भाऊराव चिपलूणकर ने दो हजार रुपये दिये थे। जब सावरकर

जी बम्बई से रवाना हुए तो उनकी बिदाई के उपलक्ष में बम्बई, पूना और नासिक आदि स्थानों पर विराट सभायें की गईं। ९ जून सन् १९०६ को आप बम्बई से 'परशिया बोट' नामक जहाज पर बैठकर इंगलैण्ड के लिये रवाना हुए। इंगलैण्ड जाने से पहिले पूना में आपकी अगम्य गुरु से भेंट हुई जो इंगलैण्ड से लौटकर आये थे। आपने उनसे इंगलैण्ड के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम कीं और 'इण्डिया हाउस' जहां जाकर उन्हें निवास करना था, के विषय में भी बहुत सी बातें मालूम कर ली थी।



इंगलैण्ड में आन्दोलन

स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मतः।
आददे नाति शीतोष्णः नभस्वानिव दक्षिणः ॥

—कालिदास

श्री सावरकर जी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की छात्रवृत्ति द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये बम्बई से ९ जून सन १९०६ को चलकर २-३ जुलाई को इंगलैण्ड पहुँचे। जहाज़ पर भी सावरकर जी ने अपना कार्य जारी रखा। इंगलैण्ड जाने वाले भारतीय यात्रियों से देश तथा धर्म के विषय में वाद-विवाद

करना उनका स्वभाव था। जहाज़ में आपकी एक बंगाली युवक रमेशदत्त तथा एक पंजाबी युवक हरनामसिंह से विशेष भेंट हुई। हरनामसिंह इंगलैण्ड पहुँचने भी न पाया था कि रास्ते से ही उसका विचार वापिस भारतवर्ष लौटने का हो गया। परन्तु सावरकर जी ने उससे आग्रह किया और अपना उद्देश्य समझाया कि वहां हम भारत की स्वतन्त्रता के लिये उद्योग करेंगे तो वह भी इंगलैण्ड चलने पर उद्यत हो गया और वहां पहुँचकर हरनामसिंह ने सावरकर जी के कार्यों में बहुत सहायता दी। सावरकर जी ने जहाज में ही महाराणी पद्मिनी के सतीत्व पर एक ओजस्वी कविता लिखी, जिसका यात्रियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। इंगलैण्ड पहुँचने पर पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा ने सावरकर जी का शानदार स्वागत किया और उनको बड़े प्रेम से अपने 'इण्डिया हाउस' में ले गये। यहीं सावरकर जी के रहने का प्रबन्ध था। पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा उन दिनों इंगलैण्ड में 'होमरूल' का आन्दोलन बड़े जोरों से कर रहे थे, और अपने विचारों के प्रचार के लिये वे अपना एक पत्र 'इण्डियन सोशलिजिस्ट' भी प्रकाशित करते थे।

सावरकर जी अपने यूनिवर्सिटी के समय से अतिरिक्त समय में राजनीति आदि विषयों के ग्रन्थ पढ़ा करते और आयरलैण्ड, फ्रांस, इटली और चीन आदि की राजनीति पर मनन किया करते थे। जब सावरकर जी इंगलैण्ड पहुँचे तब उसी वर्ष पार्लियामेण्ट में भारत के बजट का विषय प्रस्तुत था,

उसका भी सावरकर जी पर बहुत प्रभाव पड़ा। सावरकर जी ने सन् १६०६ में एक पुस्तक 'सिखों का इतिहास' लिखी, जो उन्होने अपने दो वर्ष की आयु वाले पुत्र प्रभाकर को समर्पित की। इटली के निर्माता श्री 'मेजिनी का जीवन-चरित्र भी सावरकर जी ने इंगलैण्ड में लिखा, किन्तु वह मरहठी मे था, इसलिये नासिक में छपा। इस पुस्तक का इतना मान था कि यह वेद की तरह पूजी जाती थी। सावरकर जी ने इनके अतिरिक्त एक और पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था '१८५७ की कहानी'। यह महान् आश्चर्य की बात है कि पुस्तक का छपना तो अलग, वह अभी पूरी लिखी भी नहीं गई थी कि, सरकार ने यह समझ कर कि मेजिनी के जीवन चरित्र की तरह यह भी आग लगाने वाली ही होगी, उसे पहिले ही जब्त कर लिया। निदान् वह पुस्तक युरोप के किसी अन्य देश में छपी और वहीं से वह इधर-उधर प्रचलित हुई। उसकी कुछ प्रतियां भारत में भी पहुँच गई थी। पुस्तक की जिल्द पर युरोप के प्रसिद्ध लेखकों की प्रसिद्ध पुस्तकों का नाम लिख दिया गया था—किसी पर कुछ और किसी पर कुछ—और वह मित्रों को भेट स्वरूप दी गईं और इस प्रकार भारत पहुँचीं। उस पुस्तक की इतनी मांग थी कि अमेरिका में उसकी एक प्रति १३०) रुपये में बिकी थी।

पहिले तो सावरकर जी 'होमरूल' आन्दोलन में ही कार्य करते रहे किन्तु एक वर्ष के बाद हीं राजनैतिक-क्षेत्र में इतने परिवर्त्तन हुए कि 'होमरूल' का आन्दोलन व्यर्थ प्रतीत होने लगा

और सावरकर जी ने अपनी एक संस्था 'फ्री इण्डिया सोसाइटी' स्थापित कर दी। इसमें सभी भारतीत भाग ले सकते थे। 'फ्री इण्डिया सोसाइटी' की स्थापना १६०६ में हुई और उसकी स्थापना में जिन्होंने मुख्य सहयोग दिया उनमें से श्री हरनामसिह, खान, जायसवाल, सेन, मदनलाल धींगरा, कोरगांवकर, मणिलाल, श्री हरदयाल, भाई परमानन्द, बाबा जोशी, बापट और महेश-चरण सिन्हा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सप्ताह में एक दिन इस सोसायटी की पब्लिक मीटिंग हुआ करती थी। सावरकर जी उस सभा में इटली, फ्रान्स तथा अमेरिका के इतिहास तथा संसार की क्रान्तियों के विषय में बड़ी प्रभावशाली वक्तृता दिया करते थे। इस संस्था के द्वारा ही लोगों के विचारों का पता लगाकर श्री सावरकर जी अपनी पुरानी 'अभिनव-भारत' संस्था में पक्के देशभक्तों को भरती किया करते थे। इसी प्रकार बहुत ही शीघ्र केम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, मैनचेस्टर तथा अन्य स्थानों के भारतीय विद्यार्थियों में क्रान्ति की भावना प्रबल रूप में जागृत हो गई।

'अभिनव भारत' का इंगलैण्ड में क्या कार्य था—यह आप को अगली पंक्तियों से विदित हो जायेगा। सावरकर जी के विचारों और 'अभिनव भारत' की प्रगति से प्रभावित होकर श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा ने अपने पत्र 'इण्डियन सोशलिजिस्ट' में लिखा कि मैं भी अब क्रान्तिकारी हो गया हूँ। आपने रूस की क्रान्ति की सब कथा लिखकर यह लिखा कि भारत को भी

स्वराज्य इसी प्रकार प्राप्त हो सकता है। यह घोषित करके आप इंगलैण्ड छोड़कर फ्रांस चले गये। उन्होंने अपना होमरूल का कार्य बन्द कर दिया और 'इण्डिया हाउस' का सब कार्य सावरकर जी के सुपुर्द कर दिया। इंग्लिश पत्रों ने लिखा कि सावरकर जी पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा के लेफ्टिनेण्ट हो गये हैं। किन्तु लेफ्टिनेण्ट कैसे? पं० श्यामजी ही सावरकर जी के विचारों से प्रभावित हुए थे। सावरकर जी और पं० श्यामजी ने मिलकर जो कार्य किये उन सबका उल्लेख करना असम्भव है। प्रसिद्ध देशभक्त श्री ला० हरदयाल जी इंगलैण्ड में आई० सी० एस० की शिक्षा प्राप्त करने के लिये आये थे, किन्तु वे भी सावरकर जी के विचारों से प्रभावित होकर 'अभिनव भारत' में सम्मिलित हो गये। परिणाम यह हुआ कि उनको गवर्नमेण्ट और यूनिवर्सिटी से मिलने वाली छात्रवृत्ति बन्द हो गई और उन पर भारत न जाने का प्रतिबन्ध लग गया, इस प्रकार वे भारत से निर्वासित कर दिये गये। श्रीमती सरोजनी नायडू के भाई श्री चट्टोपाध्याय तथा मिस्टर वी० एस० अय्यर जैसे सुप्रसिद्ध विद्वानों और योग्य व्यक्तियों ने भी अपना सब कुछ त्याग कर सावरकर जी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर 'अभिनव भारत' में कार्य किया। फलस्वरूप इस संस्था की शक्ति भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में इतनी बढ़ गई कि ब्रिटिश सरकार को अपनी बहुत-सी शक्ति पर्याप्त काल तक इस संस्था को दबाने में व्यय करनी पड़ी।

'अभिनव भारत' ने बम और बन्दूक आदि का काम सीखने

के लिये एक मद्रासी, एक बंगाली और एक मरहठा—तीन युवक रूस भेजे। वे अपनी पढ़ाई-लिखाई सब कुछ छोड़कर रूस जाने लगे। उन्हें फ्रांस में एक रूसी युवक मिल गया, उसी से उन्होंने बम आदि बनाना सब कुछ सीख लिया। उसने ही एक पुस्तक भी इन्हें इस विषय की दी थी। 'अभिनव भारत' ने उस पुस्तक को छपवाकर अपने सब सदस्यों को बांटा, जिससे सबने यह काम आसानी से सीख लिया। 'अभिनव भारत' के सदस्य फ्रांस में भी थे। लन्दन और फ्रांस के सब सदस्यों को इसी पुस्तक के द्वारा बम का काम सिखाया गया था। सावरकर जी ने स्वयं भी यह सब काम सीखा और दूसरों को भी सिखाया। सावरकर जी ने आयरलैण्ड की पार्टी सेनफेन से भी अपना सम्बन्ध जोड़ना प्रारम्भ कर दिया और धीरे-धीरे चीन, मिस्र, आयरलैण्ड और भारत आदि सभी इंगलैण्ड विरोधी देशों से सम्पर्क बढ़ाने लगे।

इंगलैण्ड के भारतीय युवकों में इस समय इतना जोश आ गया था कि वे चौबीस घण्टे स्वदेश के विषय में ही सोचा करते थे। इस प्रकार इंगलैण्ड की राजनैतिक परिस्थिति दिन प्रतिदिन गर्म होती गई। और भारतीय सरकार भी बेचैन होने लगी। अब सावरकर जी और उनकी पार्टी के विषय में इंगलैण्ड के समाचारपत्रों में आन्दोलन आरम्भ हुआ। पत्र के प्रतिनिधियों का तांता सावरकर जी के पास लगा रहता था। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते और समाचार पत्रों के पृष्ठ उनसे रंगे जाते थे। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना का उल्लेख कर

देना भी आवश्यक है। एक प्रसिद्ध पत्र का प्रतिनिधि एक बार सावरकर जी से मिलने आया। जब उसने उनकी नौकरानी से पूछा कि मि० सावरकर कहां है? तो उसने, जहां सावरकर जी अपने कार्य में व्यस्त थे वहां अन्दर ले जाकर कहा कि मि० सावरकर ये हैं। प्रतिनिधि को नौकरानी पर बहुत क्रोध आया और बोला कि तुम मुझसे मजाक करती हो! मुझे एक खूबसूरत-सा छोटा सा लड़का दिखाकर कहती हो कि मि० सावरकर ये हैं। क्या प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सावरकर ये हैं? सावरकर जी प्रतिनिधि को शान्त करते हुए बोले -- मिस्टर, शान्त रहिये, क्रोध न कीजिये, सावरकर मैं ही हूँ। प्रतिनिधि को इस पर बहुत आश्चर्य हुआ। सिंह का छोटा बच्चा भी मस्त हाथी पर आक्रमण कर ही देता है। तेजस्वी पुरुष आयु के आश्रित नहीं रहा करते। सावरकर जी के लेख इंगलैण्ड, अमेरिका, चीन, रूस, फ्रांस और स्पेन के प्रमुख पत्रों में प्रकाशित होते रहते थे और भारत के भी कलकत्ता के युगान्तर और बम्बई के बिहारी पत्रों में उनके लेख छपते थे। उनसे ही अन्य समाचारपत्र भी ले लेते थे। सारे संसार की आंखे सावरकर तथा अभिनव-भारत' के सदस्य नवयुवकों की ओर खिंच गई। 'अभिनव-भारत' की शाखायें फ्रान्स, जर्मनी आदि देशों में कार्य कर रही थीं। यूरोप में इनके कई समाचारपत्र भी निकलते थे। सावरकर जी की लिखी हुई विभिन्न भाषाओं की पुस्तिकायें समय-समय पर भारत भी आया करती थीं, जिससे भारतीयों में भी वह अग्नि भभक उठी कि ब्रिटिश सरकार सहम गई।

सावरकर जी एक बार लण्डन के घण्टाघर में शिवाजी के 'वाघनख' देखने गये। वहां उन्हें शिवाजी के 'वाघनख' तो न दिखाई दिये किन्तु किसी और के ही दीख पड़े। हां, टीपू सुलतान की एक तलवार उन्होंने वहां अवश्य देखी। उस तलवार को देखकर सावरकर जी का खून खौल पड़ा और उनके हृदय में वही भावनायें लहर मारने लगीं जिन भावनाओं से प्रेरित होकर टीपू सुलतान ने एक अंग्रेज़ को अपनी इस तलवार के हाथ दिखाये थे। सावरकर जी ने अपने एक भारतीय मित्र को एक पत्र में लिखा कि अच्छा ही हुआ कि घण्टाघर में शिवाजी का वाघनख नहीं दीखा। क्योंकि जब टीपू सुलतान की तलवार देखकर ही मेरा खून खौलने लग गया तो यदि शिवाजी का वाघनख मैं देख लेता तो उसे देखकर तो न जाने मेरी क्या अवस्था हो जाती!

एक बार बड़ोदा के महाराजा श्रीमन्त सयाजीराव महाराज गायकवाड़ इंगलैण्ड गये। सावरकर जी और उनकी पार्टी के युवकों का एक शिष्टमण्डल उनसे मिला और उन्हें कहा कि जैसा राज्य आजकल भारत में चल रहा है, ऐसे राज्य की आवश्यकता नहीं। उन्होंने अपनी सब योजना बताकर उनसे कहा कि आप भारत में इसकी तैयारी करें और हम भी भारत आकर इसमें आपका पूर्ण सहयोग देंगे। सन १९०८ में नैपाल के महाराजा चन्द्र शमशेरजंग बहादुर राणा इंगलैण्ड गये। उनके भवन पर नैपाल के स्वतन्त्र राज्य की ध्वजा फहराया करती थी। उसे

देखकर सावरकर जी और उनके साथी फूले न समाते। सावरकर जी और उनके साथियो ने एक पत्र नैपाल के महाराजा के पास अपने विचारो और भारत की स्वतन्त्रता के विषय मे भेजा और उनसे सहायता चाही। उस पत्र पर सबने अपने खून से हस्ताक्षर किये थे, जिनमे सबसे प्रथम मदनलाल धींगरा का नाम था। नैपाल के महाराजा ने उस पत्र का केवल यही उत्तर दिया कि जो परमात्मा की इच्छा होगी, वही होगा।

सन् १८५७ के गदर का नाम सावरकर जी ने 'स्वातन्त्र्य-युद्ध' रखा था। इस स्वातन्त्र्य-युद्ध की स्मृति में 'अभिनव भारत' ने बैज बनवाये। उन पर '१८५७ के शहीदों की जय' ये शब्द अंकित करवाये गये। इनकी पार्टी के सब सदस्य और भारतीय विद्यार्थी उन बैजों को लगाकर यूनिवर्सिटी जाते तो प्रोफ़ेसर और अंगरेज उन पर क्रुद्ध होते कि ये बैज तुमने क्यों लगाये है? प्रोफ़ेसर यह भी कहते कि वे शहीद नहीं थे, वे तो डाकू थे। इस पर विद्यार्थी बिगड़ जाते और प्रोफेसरों से कहते कि आपने हमारे वीरों का अपमान किया है इसलिये हमसे क्षमा मांगो। प्रोफ़ेसर क्षमा क्या मांगते। फलस्वरूप भारतीय विद्यार्थी यूनिवर्सिटियो से विरोध स्वरूप निकल गये। इंगलैण्ड में सनसनी फैल गई कि एकदम यह नई क्या बात हो गई कि सब भारतीय विद्यार्थी चले गये। सन् १८५७ के उपलक्ष्य में 'अभिनव भारत' की ओर से सन् १९०७ मे स्थान-स्थान पर जलसे किये जाते थे। कभी नानासाहिब के नाम से, कभी झांसी की रानी के न'

से, कभी सरदार कुमारसिंह और कभी तात्या टोपी के नाम से जलसे होते थे और सन् १८५७ में अपने देश के लिये बलिदान हुए हुतात्माओं का इस प्रकार स्मरण करके उनको श्रद्धांजलियां भेंट की जाती थीं। तात्या टोपी के नाम से जलसा करने में सबको भय प्रतीत होता था किन्तु सावरकर जी ही एक सबसे अधिक निर्भय थे। उन्होंने कहा कि हम क्यों न इनके नाम से भी जलसा करें ? उन्होंने उनके नाम से भी जलसा किया।

सन् १९०७ में १० मई के दिन स्वातन्त्र्य-दिवस मनाया गया और उसमें शिवाजी के उपलक्ष्य में सभा हुई। इससे अगले ही दिन ११ मई को 'अभिनव भारत' की एक बैठक हुई और उसमें निश्चय किया गया कि श्री बापट को बम आदि का सब काम सीखने के लिये फ्रांस भेजा जाय। फ्रांस में हेमचन्द्रदास और मिर्जा अब्बास पेरस मे रहते ही थे। बापट वहां गये और अपना कार्य किया। इण्टरनेशनल कान्फ्रेन्स में फ्रांस, भारत के प्रतिनिधि श्री राणाजी और श्री मैडम कामाबाई सम्मिलित हुए थे। मैडम कामाबाई ने वहां भारत की स्वतन्त्रता का विचार उपस्थित किया और भारत का राष्ट्रीय ध्वज प्रदर्शित किया। सावरकर जी आदि उनसे भी मिले थे।

एक बार सावरकर जी ने सन् १८५७ का अभिनय 'इण्डिया हाउस' में किया। इण्डिया हाउस १८५७ के शहीदों के चित्रों से बहुत अच्छे प्रकार से सुशोभित किया गया था। उस अभिनय के सभापति श्री राणा जी बनाये गये थे।

'अभिनव भारत' की ओर से एक बार इंगलैण्ड मे विजया-दशमी महोत्सव मनाया गया। समस्या यह थी कि इसका सभापति किसे बनाया जाय। जिससे भी सभापति बनने के लिये कहा जाता वही मना कर देता। सबको यही भय था कि इनकी सभी सभाओ मे क्रान्तिकारी व्याख्यान होते है। अन्ततोगत्वा सावरकर जी गांधी जी के पास गये और इनसे सभापति बनने के लिये अनुरोध किया। गांधी जी ने कहा कि यदि सभा मे क्रान्तिकारी व्याख्यान न हों तो मै सभापति बन सकता हूँ। सावरकर जी ने उनकी बात मान ली और विजयादशमी-महोत्सव गांधी जी के सभापतित्व में हुआ। इस उत्सव मे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन और रामायण के महत्व आदि विषयों पर व्याख्यान दिये गये।

इस प्रकार 'अभिनव भारत' का समस्त देशों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दूसरे देशों की रुचि भी भारत की स्वतन्त्रता के लिये उत्पन्न हो गई। जर्मनी के बादशाह कैसर ने, अमेरिका के प्रेजीडेण्ट विल्सन को पत्र लिखा और कहा कि संसार की शान्ति तब तक सर्वथा असम्भव है, जब तक भारतवर्ष को स्वतन्त्रता नहीं दे दी जाती। 'अभिनव भारत' के दो भाग थे। एक बहिरंग मण्डल और दूसरा अन्तरंग मण्डल। बहिरंग मण्डल का काम तो सभा, उत्सव आदि करना तथा आन्दोलन करना था और अन्तरंग मण्डल का कार्य बम आदि की शिक्षा प्राप्त करना था। 'लण्डन टाइम्स' आदि पत्रो मे कई बार एम० ए० कैण्टन आदि

के लेख सावरकर जी और 'अभिनव भारत' के विरुद्ध निकला करते थे, किन्तु उस समय उनकी कौन सुनता था। सावरकर जी अपनी योग्यता, देशभक्ति और गुणों के कारण उस समय सबके हृदयों में अपना स्थान कर चुके थे।



क्रान्तिकाल

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम् ॥

—सुभाषितानि

महारानी विक्टोरिया की 'डाइमण्ड जुबिली' का दिन है। सम्पूर्ण देश में चारों ओर प्रसन्नता ही का साम्राज्य है। सब अपने-अपने ढंग से जुबिली मनाने में तत्पर हैं। अकस्मात् उसी दिन एक समाचार बिजली की तरह सर्वत्र फैल गया कि जिनके कारण पूना में प्लेग के दिनों में अव्यवस्था होने से जनता को घोर कष्ट का सामना करना पड़ा था, उन अंग्रेज़ अफसरों का वध हो गया। धड़ाधड़ धर-पकड़ आरम्भ हो गई। नाथू भाइयों को निर्वासित कर दिया गया, श्री लोकमान्य तिलक पकड़ लिये गये और अंग्रेज़ अफसरों को मारने वाले श्री चपेकर भाई भी पकड़ कर फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिये गये। इस प्रकार महाराष्ट्र

मे क्रान्ति की भावना की अग्नि पहिले से ही सुलग रही थी कि इंगलैण्ड से सावरकर जी द्वारा भेजे हुए साहित्य और समाचार-पत्रों में प्रकाशित उनके लेखों ने उस अग्नि को सम्पूर्ण भारत और विशेषकर महाराष्ट्र में प्रदीप्त कर दिया। अंग-भंग के आन्दोलन का भी सम्पूर्ण देश पर बहुत प्रभाव पड़ा। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय और सर्दार अजीतसिंह को अण्डेमान भेज दिया गया। इससे तो सारे देश मे और तहलका मच गया। इंगलैण्ड मे भी इसके प्रतिकूल सभायें हुईं। वहां के भारतीय विद्यार्थियो में इस समय इतना जोश आ गया कि उनका खून उबाल खाने लगा। सावरकर जी और उनकी पार्टी के विषय मे इंगलेंण्ड के समाचारपत्रों में आन्दोलन हुआ और पत्र-प्रतिनिधियों का सावरकर जी के पास तांता लगा रहने लगा।

सावरकर जी अपना क्रान्तिकारी साहित्य और शस्त्रास्त्र भेज-भेजकर भारत मे भी खूब आन्दोलन कर रहे थे। सावरकर जी ने 'सिखों का इतिहास' पुस्तक एक आर्टिस्ट के हाथ भारत भिजवाई थी। इसी आर्टिस्ट की परिचित इटली की एक लड़की भारत आ रही थी, सावरकर जी ने उसी लड़की के हाथ कुछ शस्त्रास्त्र और पिस्तौल आदि भारत भिजवाये। वह लड़की उन्हे कुर्सी के कपड़े के अन्दर रखकर लाई कि किसी को पता न चल सके। लंका और मद्रास आदि घूमती हुई वह निजाम स्टेट के उस नगर मे पहुँची, जहां वे शस्त्रास्त्र भिजवाये गये थे। इन सब बातो से भारतीयो में वह अग्नि उत्पन्न हुई कि ब्रिटिश

सरकार सहम गई। पूना तथा बम्बई आदि के विद्रोहों ने तो ब्रिटिश सरकार की चिन्ताओं को और भी बढ़ा दिया। स्थान-स्थान पर गिरफ्तारियां होने लगीं और क्रान्तिकारी साहित्य ढूंढ़-ढूंढ़ कर नष्ट किया जाने लगा। सावरकर जी के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर को क्रान्तिकारी कविताओं की पुस्तक छपवाने के अभियोग में धारा १२१ ए के अनुसार गिरफ्तार कर लिया गया और आजीवन काले पानी की सजा हो गई। वीर सावरकर जी की भी सब सम्पत्ति जब्त कर ली गई। श्री परांजपे आदि भी पकड़ लिये गये।

भारत में अंग्रेज अफसरों का वध प्रारम्भ हो गया। सबसे पहिला बम बंगाल में मि० किंग्सफोर्ड पर फेंका गया। उससे वह तो बच गया किन्तु उसके स्टाफ के कुछ व्यक्ति मारे गये। पूना के कलक्टर रैंड साहिब का भी पिस्तौल के द्वारा वध कर दिया गया, और फिर १३ नवम्बर सन् १९०९ में अहमदाबाद में लार्ड मिण्टो पर बम द्वारा घातक आक्रमण किया गया जिससे एक भंगी को चोट आई। सन् १९०९ में ही नासिक के कलक्टर मि० जैक्सन 'शारदा' नामक नाटक देखने गये थे कि वहीं पिस्तौल से उनका ढेर कर दिया गया। १९ अप्रैल १९१० के दिन मि० जैक्सन का खून करने के अभियोग में अनन्त कान्हेरे, देशपाण्डे और कर्वे ये महाराष्ट्र युवक गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें फांसी की सजा मिल गई। पुलिस ने और भी जोर शोर से तलाशियां लेनी प्रारम्भ कर दीं। इसी सिलसिले में 'अभिनव भारत' की

ग्वालियर की एक शाखा से पुलिस को अनेक शस्त्रास्त्र प्राप्त हुए। किन्तु इस प्रकार सरकार भारतीय युवकों की अग्नि को शान्त न कर सकी। उनके हृदय मे तो यह भावना कार्य कर रही थी कि "परतन्त्रता में सदा दुःख है और स्वतन्त्रता मे सदा सुख है। इसलिये या तो भारत को हम स्वतन्त्र कर लेंगे या अपने को मिटा लेंगे।"

अपने कुटुम्ब पर आई हुई आपत्ति को समाचार-पत्रों में पढ़कर सावरकर जी ने अपने भाई की स्त्री को साहस बंधाने के लिये पत्र लिखा और फिर अपने उन्ही क्रान्तिकारी कार्यों में जुट गये। सावरकर जी की बैरिस्टरी की अवधि समाप्त हो गई और उन्होने अपनी सब परीक्षायें भी उत्तीर्ण कर लीं। किन्तु, इस विषय मे हम पहिले भी उल्लेख कर चुके हैं कि, अधिकारियों ने उन्हें डिग्री देने से इन्कार कर दिया और यह कहा कि यदि तुम क्रान्तिकारी कार्य छोड़ दो तो तुम्हें 'बार' की डिग्री मिल जायेगी। किन्तु धीर मनुष्य अपने निश्चित मार्ग से कब विचलित होते हैं ? सावरकर जी ने साफ निषेध कर दिया, डिग्री की कुछ भी पर्वाह न करके वे अपने कार्यों में ही लगे रहे।

उन्ही दिनों सन् १६०६ में एक दिन इंगलैण्ड में लार्ड मार्ले के ए० डी० सी० सर कर्जन विली के वध का समाचार समाचार-पत्रों में निकला। फिर क्या था, इस घटना से सारे इंगलैण्ड के कोने-कोने मे सनसनी फैल गई। विशेषकर यह सुनकर कि वध करने वाला एक भारतीय है। वध करने वाले उस युवक का नाम

मदनलाल धींगरा था। उसने दिन दहाड़े कर्जन विली को गोली का शिकार बना दिया। भारत में भी यह समाचार बिजली के समान एकदम फैल गया और इस घटना की निन्दा करने के लिये अनेकों तार भारत से इंगलैण्ड गये। इंगलैण्ड में इस घटना की निन्दा करने के लिये एक विराट् सार्वजनिक सभा हुई। उसमें मदनलाल धींगरा के कार्य की निन्दा और सर कर्जनविली के वध पर शोक प्रकट किया जा रहा था। ऐसे समय किसी की हिम्मत नहीं थी कि इस कार्यवाही का विरोध करे। अकस्मात् एक कोने से इस निन्दा के प्रस्ताव का विरोध करने की आवाज आई। सबकी आंखें उसी ओर घूम गई और सबने देखा कि विरोध करने वाला वह व्यक्ति साहस की मूर्त्ति वीर सावरकर हैं। एक व्यक्ति ने तो क्रोध में आकर सावरकर जी पर लाठी से आक्रमण भी किया जिससे उनके चश्मे का एक शीशा फूट गया। पुलिस ने सावरकर जी को गिरफ्तार कर लिया। सावरकर जी जमानत पर जेल से छूट गये। घर आते ही उन्होंने 'टाइम्स' को एक पत्र लिखा जिसमे बतलाया कि उन्होंने उस प्रस्ताव के विरुद्ध क्यों आवाज उठाई थी ? सावरकर ने लिखा कि जब तक मि० धींगरा के अभियोग का निर्णय न हो जाय तब तक इस प्रकार का कोई भी प्रस्ताव पास करना कानून के विरुद्ध है। इस प्रस्ताव से अभियोग पर प्रभाव पड़ सकता था, इसलिये मैंने इसका विरोध किया। यह पत्र दूसरे दिन जब 'टाइम्स' में लोगों ने पढ़ा तो इस विषय पर उनमें वादविवाद होने लगा। कुछ लोगों

ने तो इस कानूनी बात की बहुत अधिक सराहना की।

धींगरा के मुकद्दमे के बाद सावरकर जी इण्डिया हाउस छोड़कर विपिन चन्द्रपाल के पास रहने लगे। जब मि० धींगरा जेल मे ही थे तो उनके नाम से 'चैलेंज' नामक एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ। जिसे देखकर पुलिस के अधिकारी अचम्भे में रह गये कि यह वक्तव्य इतनी निगरानी होते हुए भी जेल से बाहर कैसे आ गया? 'लण्डन टाइम्स' का तो यह कहना था कि यह मि० धींगरा का नहीं, अपितु उनके नाम से किसी और का ही लिखा हुआ है। उसी वर्ष १७ अगस्त को अपनी मातृभूमि के लिये मि० मदनलाल धींगरा हँसते-हँसते फांसी के तख्ते पर झूल गये।

मि० धींगरा पंजाब के रहने वाले थे। इनके पिता अमृतसर में सिविल सर्जन थे। कई कहते है कि वे डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस थे। आप अच्छे सम्पन्न थे और क्षत्रिय घराने में उत्पन्न हुए थे। मि० धींगरा के बड़े भाई और छोटे भाई भी विद्याध्ययन के लिये इंगलैण्ड गये थे। इनके पिता जी की इच्छा धींगरा को इंगलैण्ड भेजने की नहीं थी। किन्तु फिर भी वे अपने पिता जी से बिना आज्ञा प्राप्त किये ही चल पड़े। जहाज में इन्हें कोई नौकरी मिल गई और उसी के सहारे आप इंगलैण्ड पहुँच गये। सन् १६०६ में मि० धींगरा लन्दन पहुँचे, उस समय उनकी आयु २१-२२ वर्ष की थी। वहां जाकर आप लन्दन के किसी कालिज में इंजिनियरिंग पढ़ने लगे। जब आपने कर्जनविली का वध

किया तो उससे पहिले आपने मि० विली को एक पत्र इस आशय का लिखा था कि आपने भारतीय युवकों को अन्याय-पूर्वक फांसी और कालेपानी का दण्ड देकर बहुत अनुचित कार्य किया है। इस सम्बन्ध में मैं आपसे मिलना चाहता हूँ। मि० विली ने उत्तर दिया कि इण्डिया हाउस में आकर मिल लें। उस समय तो उनकी भेंट न हो सकी किन्तु बाद में कई बार भेंट हुई जससे दोनों में अच्छा परिचय हो गया। मि० विली को मारने के बाद मि० धींगरा ने अदालत में अपना वक्तव्य देते हुए कहा था कि—मि० विली ने भारतीय युवकों को अन्याय से फांसी और कालेपानी का दण्ड दिया था, इसीलिये मैंने उन्हें मारा है।

अत्यन्त परिश्रम के कारण सावरकर जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। इसलिये इनके साथियों ने इन्हें वेल्स के सेनिटोरियम में भेज दिया। सावरकर जी ने वहीं पर यह समाचार पढ़ा कि इनके बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर को कालेपानी का दण्ड देने के कारण किसी मराठा युवक ने नासिक के कलक्टर का वध कर दिया है। उससे अगले ही दिन सावरकर जी को यह समाचार मिला कि उनका छोटा भाई नारायण दामोदर सावरकर जिसकी आयु केवल १७ वर्ष की ही थी, गिरफ्तार कर लिया गया है।

अब तो भारतीय युवकों में बहुत ही अधिक सनसनी फैल गई और अंग्रेजी समाचार पत्रों ने भी शोर मचाना प्रारम्भ

किया कि सावरकर जी विलायत से पिस्तौल, रिवाल्वर तथा अन्य शस्त्रास्त्र भेजते हैं और वे ही बम आदि बनाने की तरकीब बताते हैं। इसी से उनके साथी उपद्रव करते हैं। इसलिये इन सब झगड़ों की जड़ को ही क्यों न गिरफ्तार कर लिया जाय? सबको सावरकरजी के गिरफ्तार किये जाने की सम्भावना होने लगी और स्वयं उनको भी प्रतीत होने लगा कि उनका वारण्ट जारी होने वाला है। अपने साथियों के अधिक अनुरोध से सावरकर जी लन्दन से पेरिस चले गये। किन्तु वहां उनसे न रहा गया। उन्होने सोचा कि मेरे पीछे सरकार मेरे साथियों को बहुत कष्ट देगी और सम्भव है कोई यह भी विचार करें कि औरों को फँसाकर स्वयं पेरिस भाग गया। इसलिये सावरकर जी अपने साथियों के बार-बार मना करने पर भी लन्दन के लिये वापिस चल पड़े। लन्दन के स्टेशन पर पहुँचते ही सावरकर जी को गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजी सरकार ने इनको भारत ले जाकर इन पर मुकद्दमा चलाने की आज्ञा दी। वीर सावरकर, उनके साथियों के विरोध करने पर भी भारत भेज दिये गये। सावरकर जी का अपने साथियों से वियोग हो गया।



मार्सेलिस बन्दरगाह

नहि किंचिदसम्भाव्यं भवे धैर्यवतां नृणाम् ।
नैवाद्भुतमिवेत्रास्ति जगत्तेषां कृते महत् ॥

—अन्योक्तयः ।

श्री सावरकर जी को मोरिया नामक जहाज द्वारा इंगलैण्ड से भारत के लिये ले जाया गया। जहाज के चलने से पहिले ही सावरकर जी की मि० अय्यर से भेंट हुई। दोनों ने, इस अभिप्राय से कि अंग्रेज उनकी बात न समझ सकें, हिन्दी में बातें कीं। उन्होंने यह विचारा कि अब क्या उपाय करना चाहिये, जहाज मार्ग में कहां ठहरेगा, और अय्यर को अमुक दिवस अमुक स्थान पर अवश्य पहुँच जाना चाहिये। इनकी बातें हिन्दी में हुई थीं किन्तु खुफिया पुलिस वाले समझ ही गये और उन्होंने मि० अय्यर को भी पकड़ने की सोची पर सफल न हो सके। रास्ते में इनका जहाज योरिशम के पास बिस्के उपसागर में मार्सेलिस बन्दरगाह पर ७ जुलाई १६१० को रुका। मार्ग में सावरकर जी यही विचार करते रहे कि किस प्रकार इन अंग्रेजों के हाथ से छुटकारा पाना चाहिये। या तो छुटकारा पाने का अवसर अब है और या फिर कभी नहीं आयेगा। सावरकर जी की रखवाली के लिये सशस्त्र सिपाहियों का एक बलवान् झुण्ड प्रति समय इन्हें घेरे रहता था। सावरकर जी ने अपने मन में

यही धारणा कर ली थी कि भारत जाकर या तो मुझे मृत्यु दण्ड मिलेगा अन्यथा आजीवन कालेपानी का दण्ड तो अवश्य ही होगा। इसलिये उन्होंने पुलिस के हाथ से छुटकारा पाने का ही निश्चय कर लिया। सावरकर जी ने एक युक्ति सोची और पुलिस अफसरों से कहा कि मुझे पाखाने में ले चलो। पुलिस वाले उन्हें पाखाने में ले गये। पाखाने के सामने एक शीशा रखा हुआ था जिसमें से अन्दर के मनुष्यों की सभी चेष्टायें स्पष्ट मालूम होती थीं। सावरकर जी ने टट्टी का दर्वाजा अन्दर से बन्द कर लिया और शीशे के सामने एक कपड़ा टांग दिया, जिससे पुलिस वाले उनकी चेष्टा देख न सकें। पाखाने में ऊपर रोशनदान की तरह कुछ थोड़ी सी जगह खुली हुई थी। सावरकर जी ने उसी रास्ते से निकलने के लिये प्रयत्न किया। दो-एक बार के बाद उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिल गई और वह पुरुष-सिंह उसी छोटे से मार्ग से निकल कर 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय' कहकर समुद्र में कूद पड़ा। इस घटना को देखकर पुलिस घबरा गई। समुद्र में तैरते हुए सावरकर जी के ऊपर पुलिस ने दो-एक पिस्तौल के आक्रमण भी किये परन्तु वे सब निष्फल रहे। सावरकर जी अपनी चतुरता से बच गये और डूबते-उतराते बन्दरगाह के सीधे घाट पर पहुँचे। बड़ी कठिनाई के बाद उस घाट पर चढ़ सके। इनके समुद्र से बाहिर निकलते ही अंग्रेज अफसरों का झुण्ड भी 'चोर' 'चोर' चिल्लाता हुआ आ पहुँचा। सावरकर जी को मन में इस समय बहुत दुःख हुआ कि मैंने

इतना प्रयत्न किया किन्तु अय्यर आदि कोई भी यहां न पहुँचा। पाठकों को स्मरण रहे कि मि० अय्यर और कामाबाई आदि चल पड़े थे किन्तु वे अवसर पर न पहुँच सके और देर में आये। सावरकर जी ने अब फ्रेंच पुलिस की खोज में भागना प्रारम्भ किया। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें एक साधारण-सा सिपाही दिखलाई पड़ा। सावरकर जी ने उससे कहा कि मैं चोर नहीं, एक राजनैतिक क़ैदी हूं और अब मैं फ्रांस की सरकार की छत्र-छाया में आ गया हूँ। मुझे मजिस्ट्रेट के सामने ले चलो। उस साधारण और अशिक्षित सिपाही की अल्पबुद्धि में यह बात न आई, उसने कुछ रुपये के लोभ में आकर सावरकर जी को अंग्रेज अफसरों के सुपुर्द कर दिया। सावरकर जी जाने के लिये तैयार न हुए। सिपाहियों में और सावरकर जी में परस्पर गुत्थमगुत्था होने लगी। अन्त में जिस प्रकार अकेले वीर अभिमन्यु को सात महारथियों ने मिलकर अधर्म से मारा था, उसी प्रकार, लगभग एक दर्जन सिपाहियों ने मिलकर अकेले वीर सावरकर को धोखे से पकड़ लिया। निर्दयतापूर्वक घसीटते हुए जहाज की ओर ले चले। किसी अंग्रेज अफसर ने क्रोध में आकर सावरकर जी को एक बड़े जोर का घूँसा मारा। फिर क्या था, सावरकर जी का पारा और भी चढ़ गया। वे बिजली की तरह झटका देकर एकदम उनके हाथ से छुट गये और उस अंग्रेज को ऐसा मारा कि वह बुरी तरह घायल होकर अचेतनावस्था में भूमि पर गिर पड़ा।

सावरकर जी जहाज पर लाये गये। पुलिस के मन मे उनका भय बैठ गया। अब तो पुलिस उन्हें एक मिनट के लिये भी न छोड़ती। इतनी सख्त निगरानी कि पाखाने मे भी साथ-साथ ही जाती। थोड़े दिनो के बाद सावरकर जी का वह जहाज बम्बई पहुँचा। नंगी तलवारों के पहरे में सावरकर जी जहाज से उतारे गये। और फिर एक बन्द कार मे बिठाकर नासिक ले जाये गये। पुलिस ने सावरकर जी के लिये ऐसा प्रबन्ध कर रखा था और उसके मन में ऐसा भय बैठ गया था जैसा कसी भयंकर खूँख्वार डाकू से हो जाता है।

सावरकर जी को फ्रेंच सरकार के राज्य की सीमा में से पकड़ ले जाने का समाचार बिजली की भांति समस्त संसार मे एक दम फैल गया। अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी आदि देशों के सभी समाचार-पत्रों ने अंग्रेजो के इस कार्य की निन्दा की और इसके प्रतिकूल आवाज उठाई। फ्रांस की सरकार ने भी इस घटना पर पर्याप्त विचार किया। उस समय फ्रांस इंगलैण्ड को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था इसलिये उसके विरुद्ध कुछ कार्यवाही न कर सका। सावरकर जी का यह केस हेग मे संसार की सबसे बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय अदालत मे भेजा गया और सावरकर को फ्रेंच सरकार को सौंप देने का पर्याप्त आन्दोलन हुआ किन्तु वह सब निष्फल रहा। सावरकर जी तथा अन्य क्रान्तिकारियों का अभियोग सुनने के लिये कुछ विशेष ही जज नियुक्त हुए।



कालापानी

यस्यां स केसरियुवा पदमाबबन्ध,
गन्धद्विपेन्द्र रुधिरारुणितां गनायाम् ।
तामद्य पर्वतदरीं धुतधूम्रलोमा,
गोमायुरेष वपुषा मलिनी करोति ॥

—अन्योक्तयः ।

सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अभियोग लगाकर धारा १२१ ए के आधीन वीर सावरकर जी पर मुकद्दमा चलाया गया। आपको बम्बई से नासिक हथकड़ी लगाकर लाया गया था। जब आप नासिक में पहुँच गये तो वहां किसी ने आपको एक पत्र दिया जिसमें इस बात का उल्लेख था कि फ्रांस की सरकार ने, इंगलैण्ड से, अपनी सीमा में से गिरफ्तार करके ले जाया गया हुआ व्यक्ति वापिस मांगा है। उन दिनों क्रान्तिकारियों के मुकद्दमों की जग में सर्वत्र चर्चा हो रही थी और सावरकर जी के मुकद्दमे की तो बहुत ही हलचल थी। आपको नासिक से बम्बई हाईकोर्ट ले जाया गया। वहां आपके मुकद्दमे के समय सशस्त्र घुड़सवारों का बड़ा सतर्क पहरा रहा करता और जनता की भी अपार भीड़ रहा करती थी। जब सावरकर जी जेल से कोर्ट तक आते तो मार्ग में जनता हृदय से अभिनन्दन करती।

आपका मुकद्दमा डेढ़ मास तक चला और २३ दिसम्बर सन् १६१० के दिन जजों ने अपना निर्णय सुना दिया। सावरकर जी पर तीन भयंकर अपराध लगाये गये। जजों ने अपने निर्णय में यह भी कहा कि सावरकर को फांसी का दण्ड मिलना चाहिये था, किन्तु हम केवल कालेपानी का ही दण्ड देते हैं। दो आजीवन कालापानी और नजरबन्दी आदि सब मिलाकर सावरकर जी को ५४ वर्ष का कठोर दण्ड दिया गया। जिस दिन जजों द्वारा निणय सुनाया जाने को था, उस दिन तो कोर्ट के चारो ओर सुनने वालों का अपार जन समुदाय समुद्र की भांति उमड़ आया था। पुलिस का उस दिन बहुत विशेष प्रबन्ध किया गया। अदालत का निर्णय सुनने के बाद सावरकर जी ने कहा—"तप और बलिदान से ही हमारी प्रिय मातृभूमि निश्चय ही विजय पायेगी, यह मेरा पूर्ण विश्वास है। इसीलिये मैं तुम्हारे कानून का यह कठोर दण्ड भोगने के लिये तैयार हूँ।" यह कहकर भारत मां के लाल वीर सावरकर ने कैदियों के वस्त्र पहिन लिये। इन्हें देखकर एकत्र भारी भीड़ के हृदय में भी मातृभूमि के प्रति पवित्र भावनायें उद्वेलित होने लगीं। 'स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय' और 'वन्देमातरम्' आदि का जयघोष करके जनता ने अपने वीर सावरकर को हृदय से प्रणाम और अभिनन्दन किया। जनता के इस उत्साह को देखकर पुलिस अधिकारियों ने जनता को भी दबाने का प्रयत्न किया।

काले पानी के दण्ड के साथ-साथ सावरकर जी की सारी

सम्पत्ति भी जब्त कर ली। सन् १६११ में सावरकर जी अण्डेमान पहुँचे। वहां की जेलों की बहुत ही बुरी हालत थी। कमरे अंधेरे तथा कच्चे थे। बरसात होने पर छत से पानी टपकता था। अण्डेमान का जलवायु भी बहुत बुरा है। इसलिये नये आदमी को वहां मलेरिया आदि हो जाना तो एक साधारण-सी बात थी। सावरकर जी सदा संयमपूर्वक रहते थे इसलिये ये बीमारी से बचे रहे। वर्ष में एक बार घर पत्र लिखने की आज्ञा मिलती थी। सावरकर जी के बड़े भाई गणेश दामोदर सावरकर को पहिले ही काला पानी मिल चुका था, अब वीर सावरकर भी वहां पहुँच गये। कुछ वर्षों के पश्चात् श्री भाई परमानन्द जी भी वहीं पहुँच गये। बंगाली नवयुवक तो कई पहिले से ही वहां सड़ रहे थे। सावरकर-बन्धुओं को सबसे अलग रखा जाता था और इन्हें परस्पर भी न मिलने दिया जाता था। यहां तक कि बड़े भाई को अभी तक यह मालूम भी न हुआ था कि मेरा प्रिय भाई विनायक दामोदर सावरकर भी वहां ही आ पहुँचा है। वे सावरकर जी को तात्या कहा करते थे। एक दिन बाग में घूमते हुए दोनों की भेंट हो गई। बड़े भाई ने आश्चर्य से पूछा— 'तात्या ! तूं इथें कसा ?' अर्थात्—तात्या, तू यहां कैसे आ गया ? सावरकर जी ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। सावरकर जी अण्डेमान में अनपढ़ों को पढ़ाया करते और चक्की पीसा करते थे। सावरकर जी के हृदय में मातृभूमि को स्वतन्त्र करने की भावनायें वहां भी जागरूक होकर कार्य कर रही थीं। सावरकर

जी गीत बनाया करते और उन्हें दीवारों पर लिख दिया करते थे। आन्दोलन का उन्होंने इस समय केवल यह ही उपाय सोच रखा था। किन्तु अधिकारी दीवारों पर लिखे हुए को भी मिटाने लगे। सावरकर जी कैदियों मे भी देश प्रेम के भाव भरते ही रहे। महायुद्ध छिड़ जाने के कारण राजनैतिक कैदियों के साथ कुछ अच्छा व्यवहार होने लगा। इसलिये भारत से कुछ पुस्तकें मंगाकर वहां पर एक छोटा सा पुस्तकालय बनाया गया। सावरकर जी नवयुवक कैदयो को अर्थशास्त्र, इतिहास तथा राजनीति आदि का अध्ययन करने के लिये उत्तेजित करते और स्वयं इन विषयों पर व्याख्यान देते। सावरकरजं ने अण्डेमान में हिन्दुओं को मुसलमान होते देखकर शुद्धि का भी काफी कार्य किया।

ब्रिटिश अधिकारियों का विचार था कि अण्डेमान में जाकर सावरकर के विचार ठीक हो जायेंगे, पर उनकी आशाओं पर तुषारपात हो गया। सावरकर जी पर मानसिक तथा शारीरिक कष्टो का प्रभाव अवश्य हुआ। अत्यन्त परिश्रम के कारण सावरकर जी बीमार हो गये। सन् १६२० में भाई परमानन्द जी अण्डेमान से छूटकर लाहौर आये। उम्होने आते ही सावरकर जी को छुड़ाने के लिये भी प्रयत्न आरम्भ कर दिया। उन दिनों पार्लियामेण्ट का एक मेम्बर काल वेजवुड भारत आया। वह लाहौर भी आया और वहां लाला लाजपतराय के मकान पर ठहरा। लाला जी ने भाई जी की मुलाकात उनसे करा दी। लगातार ६ घण्टे के वाद-विवाद के बाद उसने सावरकर के

छुटकारे के लिये प्रयत्न करने का वचन दिया। जब वाल वेजवुड भारत से वापिस लौटने लगा तो वह बम्बई के गवर्नर से मिला। बम्बई के गवर्नर ने बतलाया कि अब मेरी जगह दूसरा ही गवर्नर आने वाला है। इसलिये वेजवुड ने इंगलैण्ड जाकर उस नये गवनर से सावरकर-बन्धुओं को अण्डेमान से भारत वापिस बुलाने के लिये कहा। नये गवर्नर ने भारत आते ही यह कह कर कि, सावरकर बन्धुओं को अण्डेमान का जलवायु हानिकारक प्रतीत होता है उन्हें भारत वापिस बुला लिया।

अण्डेमान में सावरकर जी को कुछ क्षयरोग की-सी शिकायत हो गई थी और आप इतने निर्बल हो गये कि आपके जीवन की भी कम आशा रह गई थी। अण्डेमान में आपका वजन ११६ पौण्ड से घटकर केवल ६८ पौण्ड रह गया। सन् १६२४ में दोनों भाइयों ने फिर अपनी मातृभूमि के दर्शन किये और कलकत्ता बन्दरगाह पर उतरे। वहां फिर सावरकर जी को अपने बड़े भाई से अलग कर दिया गया और इन्हें रत्नागिरि जिले की जेल मे भेज दिया गया।



कालापानी के बाद

अलं महीपाल तव श्रमेण
प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलन शक्ति रंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥

रघुवंश महाकाव्य

मैं अब शीघ्र ही अपनी प्यारी मातृभूमि के दर्शन करूंगा इसका सावरकर जी को स्वप्न में भी ध्यान न था। २१ जनवरी सन् १६२१ के दिन उनका डी० टिकट निकाल लिया गया। इससे सावरकर जी को कुछ सन्देह तो अवश्य हुआ किन्तु फिर भी उन्हें यह विश्वास न था कि वे भारत ले जाये जायेंगे। एक दिन अकस्मात् एक वार्डर ने सावरकर जी को एक पत्र लाकर दिया जिसमे यह लिखा था कि अब आपको बम्बई की जेल में रखा जायेगा। सावरकर जी के हृदय में भारतभूमि के दर्शनों की कुछ आशा उत्पन्न हो गई और उनकी दर्शनों के लिये उत्कण्ठा भी प्रवल होती गई। सावरकर जी ने अपनी पुस्तकें आदि बांधकर चलने की तैयारी कर ली। १० फर्वरी को सावरकर जी और उनके बड़े भाई बाबा गणेश दामोदर सावरकर दोनों ने अन्दमान से प्यारी भारत भूमि के लिये प्रस्थान किया। प्रस्थान करते समय सावरकर जी ने अपने बड़े भाई से कहा— बाबा, अन्दमान की

सीमा जीवन और मरण की देहली है। अब हम यहां से बाहिर जा रहे हैं, देखें वहां क्या होगा। जब आप अन्दमान के कैदियों से विदा लेने लगे तो एक क़ैदी जो बाग़ में जमादार था, उसने सब कैदियों की ओर से सावरकरजी के गले में पुष्पहार पहिनाये और अभिनन्दनपूर्वक सबने विदा दी। महाराजा बोट से सावरकर जी भारत के लिये अन्दमान से विदा हुए। जहाज के किसी अन्य कमरे में स्थान न होने के कारण सावरकर जी को पहिले तो पागलों के एक कमरे में ही रख दिया गया किन्तु पीछे से उन्हें वहां से पृथक् करके दूसरे कमरे में पहुँचाया गया। जहाज में भी दोनों बन्धु अलग-अलग रखे गये थे। जहाज में यात्रा करते हुए तीन दिन व्यतीत हो चुके और चौथे दिन सावरकर जी को मातृभूमि के तट का दर्शन हुआ। भारत का दर्शन होते ही सावरकर जी के हृदय में मातृभूमि का प्रेम हिलोरें मारने लगा और वही पुरानी भावनायें सब एकदम फिर जागृत हो उठीं। सावरकर जी को पहिले तो कलकत्ता की अलीपुर जेल में बन्द रखा गया और तदनन्तर इन्हें सन् १९२७ में रत्नागिरि जिले की जेल में भेज दिया गया। सन् १९२७ तक आप वहीं नजर-बन्द रहे।

रत्नागिरि आकर सावरकर जी को कुछ थोड़ी सी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई और आपको जिले भर में घूमने की आज्ञा मिल गई। आपने सारे जिले में हिन्दू महासभा का ऐसा कार्य किया

कि लोगों के हृदयों में हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। यहां पर इन्होंने शुद्धि तथा अछूतोद्धार का कार्य भी पर्याप्त मात्रा में किया। गद्य तथा पद्य में अनेक पुस्तके लिखीं जो मराठी साहित्य में बड़ी उच्च कोटि की समझी जाती हैं। 'हिन्दुत्व' लिखकर इन्होंने 'हिन्दू' शब्द की ऐसी परिभाषा हिन्दुओं के समक्ष रखी जिससे सभी सम्प्रदायों के लोग सभी हिन्दुओं को एक समझने लगे तथा उनके अन्दर एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना जागृत हो गई। सावरकर जी को साहित्य में भी रुचि थी, इस कारण आपने नाटक और कविता की भी कई पुस्तकें लिखीं। आपकी लिखी हुई पुस्तकों में मुख्य ये समझी जाती है—(मराठी में) १–जोसेफ मेझिनी यांचे आत्मचरित्र व राजकारण (जब्त) २–शिखांचा इतिहास (अप्रकाशित : नष्ट), ३–माझी जन्मठेप (जब्त), ४–कालेपाणी (कादंबरी), ५–सं० उःशाप (नाटक, ६–सं० संन्यस्त खड्ग (नाटक), ७–सं० उत्तरक्रिया (नाटक), ८–मला काय त्यांचे (कथा), ९–नेपाली आंदोलनांचा उपक्रम, १०–सावरकर-साहित्य, भाग १-५ (अंग्रेजी में):—१–इण्डियन वार आफ इण्डिपेण्डेन्स (जब्त), २–हिन्दुत्व, ३–हिन्दू पाद पादशाही (कविता में):—१–राव फुलें, २–गोमांतक।

सावरकर जी के साहित्य का हिन्दी, अंग्रेजी और मराठी आदि अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। आपकी बनाई हुई कवितायें आज महाराष्ट्र-भर की जिह्वा पर विराजमान हैं।

सावरकर जी के दिन इसी प्रकार रत्नागिरि की नजरबन्दी में ही बीतते गये। सन् १६३७ में पार्लियामेण्ट से नया विधान बनकर आया। उसके अनुसार प्रांतीय सरकार की बागडोर बहुत कुछ प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में आ चुकी थी। सारे देश में चुनाव हुआ। सात प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत रहा किन्तु कुछ दिनों तक आफिस स्वीकार करने के विषय में कांग्रेस में वाद-विवाद होता रहा। इस समय के लिये गवर्नरों ने अस्थायी मन्त्रिमण्डल बना लिये और इस कार्य को अन्य प्रतिनिधियों ने सँभाला। हिन्दुओं के सौभाग्य से बम्बई में श्री जमनादास मेहता भी उसमें भाग लेने के लिये बुलाये गये। उन्होंने कुछ शर्तों पर मन्त्रिमण्डल के साथ सहयोग करना स्वीकार कर लिया। उन शर्तों में श्री वीर सावरकर जी का छुटकारा भी एक शर्त थी। इस प्रकार श्री जमनादास मेहता के उद्योग से वीर सावरकर १० मई १६३७ को सब बन्धनों से मुक्त कर दिये गये और फिर आप अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे।

गृहस्थ-जीवन

परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

सुभाषितम्।

संसार में जो सज्जन होते हैं उनके सब कार्य-कलाप और समस्त जीवन परोपकार के लिये ही होता है। हमारे चरित्र-

नायक वीर सावरकर का भी सारा जीवन देश सेवा और जेलों में ही कटा। इसीलिये इनके जीवन में देश सेवा ही दृष्टिगोचर होती है, गृहस्थ-जीवन का कुछ महत्त्व ही नहीं। सावरकर जी के जितने भी जीवन चरित्र आज तक लिखे गये हैं, उनमें इनके गृहस्थ-जीवन पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

सन् १६०१ में सावरकर जी ने मैट्रिक पास कर लिया तब इनके विवाह का प्रश्न भी उपस्थित हुआ। सावरकर जी पहले तो अपना विवाह कराने से मना करते रहे किन्तु अर्थ-दारिद्र्य ने इन्हें विवाह कराने के लिए बाध्य किया। सावरकर जी की इच्छा मैट्रिक पास करके कालिज में उच्च शिक्षा प्राप्त करने थी किन्तु उसके लिए व्यय करने का रुपया कहां से आवे। इनके बड़े भाई ने कहा कि चिपलूणकर महाशय की कन्या से यदि तुम विवाह कर लोगे तो तुम्हारी शिक्षा का सब व्यय वे स्वयं ही उठाने को तैयार हैं। इस पर सावरकर जी ने अपने विवाह की अनुमति दे दी और सन् १६०१ में जवाहर रियासत के उच्च पदाधिकारी श्री भाऊराव चिपलूणकर की कन्या माई के साथ सावरकर जी का विवाह संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। सन् १६०५ में सावरकर जी का प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम प्रभाकर रखा गया। किन्तु दैवदुर्विपाक से वह अंकुर अभी विकसित भी न होने पाया था कि विधाता ने उसे उसी अवस्था में छीन लिया। एक वर्ष की अवस्था में ही वह स्वर्गवासी हो गया। तदनन्तर सावरकर जी इंगलैण्ड में रहे और फिर कालेपानी की कठोर

यातनायें सहने के कारण अपनी धर्मपत्नी से पृथक् ही रहे। सन् १९२७ में जब आप कालेपानी से रत्नागिरि आये तब आपको कुछ स्वतन्त्रता मिली थी। रत्नागिरि आने पर आपके एक कन्या रत्न और एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। कन्या का नाम प्रभाबाई और पुत्र का नाम विश्वास सावरकर रखा गया। इस समय आपके ये दो ही सन्तति रत्न हैं।



हिन्दू महासभा में

पंचानामपि भूतानामुत्कर्षं पुपुषुर्गुणाः।
नवे तस्मिन् महीपाले सर्वं नवमिवाभवत्॥

—कालिदासः

जब वीर सावरकर को जेलों के जीवन से विश्राम मिला और रत्नागिरि की जेल से आप स्वतन्त्र हुए तो समस्त देश में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। समस्त जनमात्र ने आपका हृदय से अभिनन्दन किया। अपने श्रेष्ठ नेता की खोज में सारे देश की आंखें आपकी ही ओर लग गईं। इस क्रान्तिकारी नेता का स्वागत करने के लिए कांग्रेस के नेता भी तैयार ही बैठे थे। यदि उस समय सावरकर जी कांग्रेस में सम्मिलित हो जाते तो इस सत्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आज वे जिस प्रकार निरन्तर कई

वर्षों से हिन्दू महासभा के अध्यक्ष है, उसी प्रकार कांग्रेस के अध्यक्ष भी आप ही रहते। देश की सब प्रमुख संस्थाओं ने यह इच्छा और प्रयत्न किये कि सावरकर जी आकर हमारा नेतृत्व करे, किन्तु इस वीर के हृदय में तो बाल्यकाल से हिन्दुत्व के भाव ही भरे हुए थे। हिन्दुत्व के बिना आप स्वराज्य को भी निकम्मा समझते थे, इसलिये आप कांग्रेस में कैसे सम्मिलित होते ? कांग्रेस में हिन्दुत्व का विनाश किया जाता है और कांग्रेस के नेता अपने को हिन्दू तक कहलाने मे लज्जा और पाप का अनुभव करते हैं। कांग्रेसवादियो का लक्ष्य तो सदा मुसलमानों को प्रसन्न करना ही रहा है। फिर भला हिन्दुत्व का रक्षक हमारा वीर नेता हिन्दुत्व विरोधी संस्था में कैसे जा सकता था। सावरकर जी ने अपने स्वार्थ, सन्मान और वैयक्तिक लाभ की कुछ भी पर्वाह न करके हिन्दुत्व को सेवा करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझा और यही विचार कर आप हिन्दू संगठन का कार्य करने लगे।

हिन्दू जगत को भी एक चतुर मांझी मिल गया और उसने अपनी हिन्दू नौका का सब भार उसके ऊपर ही सौंप दिया। दिसम्बर १६३७ में अहमदाबाद में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था। सर्वसम्मति से आप ही उसके सभापति निर्वाचित हुए और सभापति बन कर आपने हिन्दू-जगत् की जो अमूल्य सेवायें कीं उनको हिन्दू-इतिहास कभी भी भुला नहीं सकेगा। इन सेवाओं से हिन्दू-जगत् इतना

सन्तुष्ट हुआ कि उसके पास सिवाय सावरकर जी के और कोई ऐसा नेता न रहा जिसे वह अपना सभापति बनाता। १९३७ से निरन्तर आज तक आप ही हिन्दू महासभा के सभापति निर्वाचित्त होते आ रहे हैं।

सावरकर जी ने अपनी प्रथम सिंह गर्जना अहमदाबाद में सभापति के आसन से की। आपने इस समय जो भाषण दिया वह चिरकाल तक स्मरणीय रहेगा और हिन्दू जाति के मुर्दा ढांचे में सदा नवजीवन का संचार करता रहेगा। किसी ने इस अभिभाषण को गीता का उपदेश कहा, किसी ने इसे हिन्दुओं की बाइबिल का नाम दिया। सरांश यह कि इस भाषण ने समस्त हिन्दू-जगत् के हृदय में गहरा स्थान बना लिया। इस भाषण में आपने 'हिन्दू' शब्द की ऐसी परिभाषा हिन्दू-जगत् को बताई जिसका समस्त हिन्दुओं पर बहुत प्रभाव पड़ा और सब सम्प्रदायों के लोग सभी हिन्दुओं को एक समझने लगे।

अहमदाबाद के अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव द्वारा गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट १९३६ को असन्तोषजनक तथा अपूर्ण घोषित किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा निज़ाम व भूपाल की मुसलमान सरकारों को चेतावनी दी कि उनके राज्यों में हिन्दुओं के साथ अन्याय होता है अतः उन्हें चाहिए कि इसका उचित प्रबन्ध करें। बंगाल की मुस्लिम सरकार वहां खुल्लमखुल्ला हिन्दुओं से विरोध कर रही थी उसको भी सावधान रहने की चेतावनी दी और वहां के हिन्दुओं को संगठित

होने की आज्ञा दी गई। सरकार एक हिन्दू प्रान्त आसाम को मुस्लिम प्रान्त बनाने पर तुली हुई थी उसकी भी निन्दा की गई और हिन्दुओं को उसका सामना करने को कहा गया। एक और प्रस्ताव द्वारा सरकार से कहा गया कि वह कोई ऐसा क़ानून बनावे कि जिससे हिन्दूसभाओं को अधिकार हो कि वह हिन्दुओं से दान लेने वाली संस्थाओं का हिसाब कमेटी द्वारा जाच करा सके।

सावरकर जी को हिन्दू महासभा के उद्देश्य से अभी पूर्ण सन्तोष न था, इस लिये अहमदाबाद के अधिवेशन पर आपके आदेशानुसार उसके उद्देश्य में भी परिवर्तन किया गया। हिन्दू-महासभा का उद्देश्य अब से 'पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति' रखा गया। इसके शब्द ये हैं —हिन्दू महासभा का उद्देश्य हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू नीति जिसका लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति अर्थात् हिन्दुस्थान को उपयुक्त एवं आर्य-धर्म-संगत, सुनियमित उपायों से पूर्ण स्वराज्य अथवा उसके पूर्ण राजनैतिक अधिकार एवं स्वतन्त्रता प्राप्त कराना तथा सब सामग्री की, जो हिन्दू राष्ट्र के अभ्युत्थान, शक्ति और गौरव-वृद्धि का हेतु है, रक्षा और उन्नति करना है।

रत्नागिरि जिले की जेल से मुक्त होते ही सावरकर जी ने महाराष्ट्र में दौरे लगाने प्रारम्भ कर दिये। अहमदाबाद अधिवेशन की समाप्ति पर तो आपने समस्त भारत वर्ष का दौरा लगाया और बड़े-बड़े नगरों में जाकर विशाल सभायें कीं और हिन्दू-

महासभा का सन्देश हिन्दुओं तक स्वयं पहुँचाया। आप जिस स्थान पर भी गये, हजारों-लाखों हिन्दुओं ने आपको सिर-आंखों पर लिया। आपके ऐसे भव्य स्वागत हुए और विशाल जुलूस निकले कि कांग्रेस आदि के बड़े बड़े नेताओं के भी आज तक न निकले होंगे। सब स्थानों पर हिन्दू जनता में उत्साह की तरंग दौड़ गई और मरती हुई हिन्दू जाति में फिर से नवीन शक्ति से संचार होने लगा। सावरकर जी के समस्त देश में दौरों के तीन उद्देश्य थेः—(१) हिन्दू-संगठन का सन्देश लाखों-करोड़ों हिन्दुओं तक पहुँचाना। (२) हिन्दुओं में क्षात्र-धर्म की जागृति तथा वृद्धि करना। (३) हिन्दुओं के अन्दर से छूतछात आदि बुराइयों को दूर करना और उनमें शुद्धि आदि का प्रचार करना।

हिन्दू महासभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक ७ फर्वरी १६३८ को दिल्ली मे रखी गई। राष्ट्रपति सावरकर ६ फर्वरी को प्रातःकाल की गाड़ी से दिल्ली आये। भारत की राजधानी तृषित नेत्रों से अपने राष्ट्रपति का स्वागत करने को उत्सुक बैठी थी। सारी राजधानी बड़ी सुन्दर विधि से सजाई गई थी। आपका नगर में विराट् जलूस निकाला गया। उस अपूर्व जुलूस में एक लाख नर-नारियों से कम सम्मिलित न थे। सायंकाल सार्व-जनिक सभा में कम से कम ५० हजार हिन्दुओं ने अपने नेता का सन्देश सुना। इस प्रकार सावरकर जी ने इस वर्ष समस्त देश के सब प्रान्तों का भ्रमण अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया और हिन्दू-जगत जानता है कि सावरकर जी अपने उद्देश्यों की

पूर्ति में कहां तक सफल हुए हैं। आपके आने से हिन्दू महासभा में काफी जान आ गई है और हिन्दुओं के हृदय में हिन्दू महासभा के लिये दिन प्रतिदिन श्रद्धा बढ़ती ही जा रही है। अपने दौरो से आपने हिन्दुओं में जागृति उत्पन्न कर दी। आपके आने से हिन्दू महासभा की स्थिति बहुत बढ़ गई और आप भारत की राजनीति में प्रमुख भाग लेने लगे। भारत की सरकार ने देश की मुख्य संस्थाओं में हिन्दू महासभा की गणना करके इसे हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था मान लिया। भारत के वायसराय महोदय ने राजनैतिक विषयों पर परामर्श करने के लिये कई बार हिन्दुओं के प्रतिनिधि के रूप में वीर सावरकरजी को आमन्त्रित किया है।



हैदराबाद-सत्याग्रह

निजाम हैदराबाद में हिन्दुओं और विशेषकर आर्यसमाजियों पर दिन-रात अत्याचार किये जाने लगे। हिन्दुओं के यज्ञोपवीत तोड़े जाते थे, हिन्दुओं को मन्दिर और हवन कुण्ड तक बनाने की आज्ञा नहीं थी, कोई हिन्दुओं का जलसा बिना स्वीकृति के नहीं हो सकता था। यदि कोई हिन्दू नेता बाहर से आता तो उसकी बहुत-बहुत जांच पड़ताल की जाने लगी। मुसलमान गुण्डे सरासर हिन्दुओं को दिन-दहाड़े लूटते, डाका मारते और उनका खून तक भी कर डालते तो उनको कोई दण्ड नहीं

दिया जाता था। हिन्दुओं में इसकी प्रतिक्रिया होने लगी और यह हैदराबाद का ही नही, अपितु अखिल भारतवर्षीय प्रश्न बन गया। प्रत्येक आर्य के हृदय में यही भावना उठने लगी कि हैद-राबाद की इस्लामी सरकार आर्यों की अग्नि परीक्षा लेना चाहती है। वर्त्तमान परिस्थिति में वह किसी अन्य प्रकार से आर्यों के साथ समानता, उदारता और न्याय का व्यवहार करने के लिये तैयार नहीं। निजाम राज्य के आर्यों को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, किस प्रकार से वहां हमारे प्रचार और संस्कार कार्य में बाधायें डाली जा रही हैं और किस प्रकार से थोड़े से दिनों के अन्दर ही तीन आर्यवीर म० वेदप्रकाश जी, म० धर्मप्रकाश जी नागणा और महादेव जी को शहीद किया गया। यह प्रश्न केवल हैदराबाद के आर्यों का ही नही, सारे आर्यजगत् का घोर अपमान है। यह समस्त आर्यजगत् के जीवन और मरण का प्रश्न है। सारे आर्यजगत् को इस प्रश्न का सामू-हिक उत्तर देना चाहिये। निजाम सरकार के वायदों की परीक्षा पहिले भी कई बार हो चुकी है। इस प्रकार समस्त हिन्दूजगत् क्षुब्ध हो उठा और हैदराबाद में आर्यसमाज तथा हिन्दूसभा की ओर से सत्याग्रह की तैयारी होने लगी। अक्तूबर सन् १९३८ के प्रथम सप्ताह में सावरकर जी दिल्ली आये और यहां आकर आपने आर्य सार्वदेशिक सभा के सदस्यों से हैदराबाद के सम्बन्ध में बातचीत की और एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया।

हैदराबाद रियासत में हिन्दुओं और विशेषकर आर्य समा-

जियो के विरुद्ध जो अत्याचार हो रहे थे, उनके सम्बन्ध मे दिसम्बर मास मे शोलापुर मे एक ऐतिहासिक आर्य सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के प्रधान बापू जी अणे थे और महात्मा नारायण स्वामी जी मुख्य कार्यकर्ता थे। सावरकर जी भी वहां गये और आपने वहां भाषण दिये। सावरकर जी ने हिन्दू महा-सभा की ओर से आर्यसमाज के नेताओं को विश्वास दिलाया कि यदि वह निजाम सरकार के अत्याचारों के विरुद्ध कोई कदम उठायेंगे तो हिन्दू महासभा भी उनका साथ देगी। शोलापुर के आर्य सम्मेलन में निजाम सरकार को चेतावनी दी गई और फिर अवधि समाप्त होने पर धर्म-युद्ध आरम्भ हो गया। जिसमें आर्यसमाज तथा हिन्दू सभा के सहस्रों सदस्य जेलों में ठूंस दिये गये और दर्जनों वीरो ने अपने प्राणों की आहुति इस धर्म-यज्ञ मे दे दी।

वीर सावरकर ने हिन्दू जनता के नाम एक वक्तव्य प्रकाशित किया—"समस्त हिन्दू जनता हिन्दू संगठनवादी और आर्यसमाजी भारतीय जनता की सेवा में निवेदन है कि रविवार २२ जनवरी को भारत भर मे निजाम-निषेध-दिवस मनाया जाय। आम हड़ताल, जलसे और जलूस निकाले जाये और जलसों में हिन्दू-महासभा और आर्यसमाज की मांगों के समर्थन में प्रस्ताव पास किये जाये तथा धार्मिक हिन्दू-अधिकार संघर्ष के लिये प्रत्येक सभा से मिलकर एक-सी आवाज लगाई जाये।" इस आज्ञा के अनुसार, जब तक यह सत्याग्रह चलता रहा, प्रत्येक मास की

२२ तारीख को भारत भर में निज़ाम-निषेध-दिवस मनाया जाता रहा।

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन नागपुर में सावरकर जी की अध्यक्षता में हुआ और उसमें हैदराबाद निज़ाम के सम्बन्ध में निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया गया :—

चूँकि हैदराबाद राज्य में हिन्दुओं को न धार्मिक पूजा आदि करने की स्वतन्त्रता है और न वे अपने नागरिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक अधिकारों को ही बर्त्त सकते हैं, और न प्रार्थना करने पर निज़ाम सरकार ने उनकी उचित और युक्तिसंगत मांगों पर ध्यान ही दिया; यहीं तक नहीं अपितु हिन्दुओं को यहां तक उनके दिल दुखाकर विवश किया कि वे वहां की सरकार की संकुचित नीति के प्रतिकूल सत्याग्रह आरम्भ करें, यह सभा निश्चय करती है कि उनके इस सत्याग्रह-संग्राम में, जो कि निज़ाम सरकार के प्रतिकूल अपने अधिकारों की अवहेलना होने पर आरम्भ किया है, उनकी पूरी सहायता करें और समस्त हिन्दू जनता से उसे उस समय तक वीरता, कर्मण्यता एवं उत्साहपूर्वक जारी रखने की प्रेरणा करे जब तक कि निज़ाम राज्य में जनसंख्या के अनुकूल हिन्दुओं के अधिकारों की उन्हें प्राप्ति होकर वहां उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की स्थापना न हो जाय।

इस प्रकार आर्यसमाज और हिन्दू महासभा दोनों का सम्मिलित सत्याग्रह निज़ाम सरकार के विरुद्ध चलता रहा। सावरकर जी के व्यक्तित्व और भाषणों से प्रभावित होकर

महाराष्ट्र के सहस्रों वीर इस सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। अन्त में आर्यसमाज के साथ निज़ाम सरकार को समझौता करना पड़ा और इसलिये सत्याग्रह भी बन्द कर देना पड़ा।



भागलपुर का मोर्चा

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के मदुरा-अधिवेशन में निर्णय हुआ कि महासभा का अधिवेशन बिहार प्रान्त के किसी नगर में, जो स्वागतकारिणी नियत करेगी, दिसम्बर सन् १६४१ की बड़े दिनों की छुट्टियों में होगा। ऐसा निर्णय वार्षिक अधिवेशन पर प्रति वर्ष हुआ ही करता था, इसलिये जब आगामी अधिवेशन बिहार में करने का निश्चय हुआ तो किसी के ध्यान में भी यह बात न आई कि यह अधिवेशन महासभा के इतिहास में एक स्मरणीय अधिवेशन रहेगा और बिहार में हिन्दू महासभा एक कड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपना मस्तक सन्मान के साथ ऊँचा कर सकेगी। अस्तु, बिहार प्रान्त में नियमानुसार स्वागतकारिणी समिति बनी और इसके नेताओं ने कई स्थान देखकर निश्चय किया कि आगामी अधिवेशन भागलपुर में बड़े दिनों की छुट्टियों में किया जाय और इसके लिये कार्य आरम्भ कर दिया।

भागलपुर में अधिवेशन होने की घोषणा के पश्चात् बिहार-सरकार के कार्यालयों में न मालूम इसकी क्या खिचड़ी पकती रही और प्रान्त के तथा विशेषकर भागलपुर के सहकारी अफसर न मालूम क्या सोच-विचार करते रहे। बिहार-सरकार ने १६ मई १६४१ को कमिश्नर साहब भागलपुर को लिखा कि वह भागलपुर के हिन्दू-नेताओं से कहें कि बिहार-सरकार महासभा के वार्षिक अधिवेशन को बड़े दिनों में भागलपुर में करने के विरुद्ध है, क्योंकि २१ दिसम्बर से मुसलमानों की बकरा ईद होगी और इसलिये भय है कि कहीं हिन्दू-मुस्लिम दंगा न हो जाय। स्वागत कारिणी समिति के मन्त्री ने उत्तर दिया कि उनकी कमेटी को इस सम्बन्ध में निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिये उन्होंने यह सब मामला बिहार-प्रांतीय हिन्दू सभा को सौंप दिया कि वह इसको अखिल भारतीय महासभा की बैठक में जो जून में कलकत्ता में होने वाली है, रखे। यह मामला जब कलकत्ता में पेश हुआ तो वहां सर्वसम्मति से पास हुआ कि भागलपुर-अधिवेशन २५ दिसम्बर से २७ दिसम्बर तक भागलपुर में ही कर दिया जाये। २६ सितम्बर को बिहार-सरकार ने घोषित किया कि 'डिफेन्स आफ इण्डिया रूल्ज' के नियम ५६ के अनुसार बिहार-सरकार ने निश्चय कर लिया है कि १ दिसम्बर १६४१ से लेकर १० जनवरी १६४२ तक अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अधिवेशन न तो भागलपुर और न ही मुंगेर, पटना, गया, शाहबाद, मुजफ्फरपुर आदि छः अन्य जिलों के

किसी भी स्थान पर करने की आज्ञा न दी जायेगी। इसका कारण यह बताया गया कि बकरा ईद के दिन समीप होने से हिन्दू मुस्लिम दंगे का भय है। इससे पहिले भी कई दंगे हो चुके हैं। सरकार इस युद्ध के समय पर्याप्त पुलिस का प्रबन्ध करने में असमर्थ है। बिहार-सरकार की यह घोषणा पढ़कर लोग तो सब अचम्भे में रह गये, पर हिन्दू महासभा के प्रधान वीर सावरकर निराश नहीं हुए और बिहार के गवर्नर से निरन्तर पत्र-व्यवहार करते रहे। अन्त में कार्यकारिणी की एक बैठक अक्तूबर मास में देहली में सावरकर जी की अध्यक्षता में हुई और उसमें सर्व-सम्मति से फिर यही निर्णय किया गया कि महासभा का २३वां अधिवेशन २४, २५, २६, २७ दिसम्बर १९४१ को भागलपुर में ही किया जाय और इसकी सूचना बिहार-सरकार को भी दे दी गई। महासभा के नेताओं ने अनुभव किया कि यदि इसी प्रकार महासभा के कार्य में रोड़ा अटकाया जाने लगा, तो महासभा एक मुर्दा-सी संस्था होगी। यदि पीछे हट गई, तो इसकी आवश्य-कता ही क्या है। बिहार-सरकार की यह रोक सर्वथा अन्याय पर थी और यही रोक महासभा के जीवन और मरण का प्रश्न बन गई। महासभा के नेताओं ने इसका उचित उत्तर दिया और सहस्रों नेता तथा कार्यकर्ता हँसते-हँसते जेल चले गये। इनमें राजे तथा जमींदार, रायबहादुर और रायसाहब, सर की उपाधि पाने वाले, लेफ्टिनेण्ट, सरकार के मन्त्री, मैजिस्ट्रेट, बैरिस्टर, वकील, डाक्टर, वैद्य, कौंसिलों तथा असेम्बलियों के मेम्बर,

पत्रकार, साहूकार और ठेकेदार प्रत्येक प्रकार के मनुष्य थे। मदुरा अधिवेशन के 'डाईरेक्ट एक्शन' वाले प्रस्ताव को स्थगित करते समय जो अभिलाषायें हिन्दू नवयुवकों के हृदयों में शेष रह गई थी, वह सब भागलपुर के मोर्चे में पूरी हो गई।

बिहार-सरकार और सावरकर जी का पत्र व्यवहार ५ दिस० १६४१ को बन्द हो गया और दोनों पक्ष अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। महासभा तो इस तैयारी में लगी कि अधिवेशन अवश्य किया जाय और बिहार-सरकार अधिवेशन को रोकने की चेष्टा पर। प्रान्तीय हिन्दू सभाओं ने भी पांचवी वार सावरकर जी को ही भागलपुर अधिवेशन का भी प्रधान चुना। यद्यपि सावरकर जी इस बार त्यागपत्र देकर किसी अन्य व्यक्ति को यह मान देना चाहते थे किन्तु बिहार-सरकार के प्रतिबन्ध के कारण उन्होंने पीछे हटना उचित न समझा और कांटों का ताज अपने सिर पर ही रखना स्वीकार कर लिया। सावरकर जी की आज्ञानुसार १४ दिसम्बर का दिन समस्त भारत में 'भागलपुर-दिवस' के नाम से मनाया गया। उस दिन सवत्र सभाये करके वायसराय महोदय को तारें दी गई कि वे स्वयं हस्तक्षेप करके बिहार-सरकार की आज्ञा को रद्द कर दें। किन्तु वायसराय महोदय ने भी इस कारण हस्तक्षेप नहीं किया कि शान्ति स्थापित रखना बिहार सरकार का कार्य था।

भागलपुर में अधिवेशन के लिये पण्डाल बन ही रहा था कि बिहार-सरकार की आज्ञा से पुलिस ने उसे तोड़-फोड़ डाला।

बिहार-प्रान्तीय हिन्दू सभा के कार्यालय की तलाशी ली गई और अधिवेशन से सम्बद्ध सब कागज पुलिस उठा ले गई। कई कार्यकर्ताओं के घरों की तलाशी हुई और स्वागतकारिणी समिति के कार्यालय की भी तलाशी ली गई। उस दिन भागलपुर में हड़ताल मनाई गई और अधिवेशन को सफल बनाने के लिए स्वागत समिति और प्रान्तीय हिन्दू सभा ने एक समिति बना दी। उस समिति के प्रथम डिक्टेटर पं० राघवाचार्य शास्त्री जी बनाये गये। आपको पटना से भागलपुर आते हुए पुलिस ने १७ दिस० को मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी के बाद मोर्चे का श्रीगणेश होता है।

इसके पश्चात् भी कई हिन्दू नेताओं ने यह प्रयत्न किये कि महासभा और बिहार-सरकार मे कोई समझौता हो जाय किन्तु बिहार-सरकार की हठधर्मी के कारण वे भी असफल रहे। ज्यों-ज्यों अधिवेशन के दिन निकट आते गये, त्यों-त्यों सरकार की नीति भी कड़ी होती गई। ऐसा प्रतीत होता था कि सारे प्रान्त की पुलिस अकेले भागलपुर में ही इकट्ठी कर ली गई है। घुड़सवार और लट्ठबन्द पुलिस की कोई गणना न थी। सिविल गार्ड भी इसी कार्य में लगाये जा रहे थे। अन्त मे २३ दिसम्बर को नगर में दफा १४४ लगा दी गई। इसी दिन से नगर मे भी पूर्ण हड़ताल जारी हो गई और यह हड़ताल २७ दिसम्बर तक रही। भागलपुर को कई मजिस्ट्रेटों के आधीन कर दिया गया। इस प्रकार सरकार हिन्दुओं का पूरा दमन करने पर उतर आई

और धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगीं।

अधिवेशन की तारीखें २४ से २७ दिसम्बर तक की थीं और यही ४ दिन मोर्चे के भी मुख्य दिन थे। सरकार ने दमन करने का पूरा प्रबन्ध कर रखा था। भागलपुर के रेलवे स्टेशन पर पुलिस का बड़ा जमाव रहने लगा। पुलिस के कई बड़े-बड़े अधिकारी, घुड़सवार और लाठीबन्द पुलिस और सिविल गार्ड महासभा के प्रतिनिधियों का स्वागत करने के लिये अपार संख्या में वहां तैनात थे। भागलपुर में पूरी हड़ताल थी। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सबकी दुकाने बन्द थीं। भागलपुर में कोई भी हिन्दू घर ऐसा न था जिस पर हिन्दू-सभा का झण्डा न फहरा रहा हो। दफा १४४ की किसी को भी पर्वाह न थी। सहस्रों मनुष्य पुलिस के साथ खड़े प्रतिनिधियों का स्वागत करते और जय-जय की ध्वनि से आकाश गुंजा देते थे। कभी-कभी लाठी चार्ज अवश्य हो जाता था, पर भीड़ फिर जुड़ जाती थी और पहिले की भांति जय-जयकार फिर होने लगता था। प्रत्येक यात्री को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। बाहर आते ही उनसे प्रश्नों की भरमार कर दी जाती थी। कई तो मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिये जाते थे। सरकार ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा था मानों कोई प्रबल शक्तिशाली शत्रु अपनी विशाल सेना द्वारा सरकार पर आक्रमण करने वाला है।

पुलिस ने धड़ाधड़ गिरफ्तारियां आरम्भ कर दीं। अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष श्री कुमार गंगानन्दसिंह को २३ दिसम्बर

की शाम को दरभंगा में ही गिरफ्तार करके उनके बंगले मे ही उन्हें नजरबन्द कर दिया। इसी दिन स्वागतकारिणी के मन्त्री तथा ६०-७० अन्य हिन्दू सभा के नेताओं और कार्यकर्ताओं को स्टेशन पर उतरते ही गिरफ्तार कर लिया और उन्हें भागलपुर-जेल में रखा गया। इतनी अधिक रोक-टोक होने पर भी बहुत से प्रतिनिधि भागलपुर पहुँच गये।

वीर सावरकर २५ दिसम्बर को बम्बई मेल से प्रतिनिधियों और कार्यकर्ताओं को साथ लेकर आ रहे थे। मार्ग मे जबलपुर, प्रयाग, काशी, मुगलसराय आदि स्टेशनों पर आपका खूब स्वागत किया जा रहा था और सावरकर जी हिन्दू कार्यकर्त्ताओ को भागलपुर चलने का निमन्त्रण देते आ रहे थे। भागलपुर जाने के लिये उन्हें गया के स्टेशन पर रात के समय गाड़ी बदलनी थी। जब गाड़ी गया पहुँची तो वहां पहिले से ही सहस्रों आदमी एकत्र थे और जय-जयकार की ध्वनि से आकाश को गुंजा रहे थे। उधर डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस भी कितने ही सिपाहियो के साथ दफ़ा २६ 'डिफेन्स आफ इण्डिया रूल्ज' का वारण्ट लिये वहां विराजमान थे। जब वारण्ट सावरकर जी को दिखाया गया तो आपने कहा कि इसे पढ़कर सुनाओ। तत्पश्चात् तुरन्त ही गम्भीरता के साथ सावरकर जी पुलिस-कार मे जा बैठे और सेन्ट्रल जेल ले जाये गये। इस समय सावरकर जी का यही सन्देश था—'हम सन्मान के साथ शान्ति चाहते हैं, भागलपुर-अधिवेशन अवश्य किया जाय और जो कार्यक्रम उन्होने पहिले

ही तैयार कर रखा था, उस पर आचरण किया जाय।' जब यह समाचार भागलपुर पहुँचा तो वहां निराशा के स्थान पर आशा और उत्साह का संचार प्रत्येक हिन्दू हृदय में होने लगा और प्रत्येक हृदय ने अधिवेशन को सफल बनाना अपना कर्त्तव्य समझा। नगर में पूर्ण हड़ताल तो थी ही। दफा १४४ का कुछ भी ध्यान न करते हुए जनता तुरन्त एक जुलूस के रूप में हो गई और यह जुलूस नगर के सब बड़े-बड़े स्थानों से गुजरा। प्रत्येक पुरुष 'हिन्दू महासभा की जय', 'वीर सावरकर की जय', 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' आदि नारे लगा रहा था। शुजागंज और लाजपतराय पार्क इन दो स्थानों पर सभायें की गईं। प्रधान श्री हरिकृष्ण वर्मा को भी गिरफ्तार कर लिया गया और जनता पर लाठी चार्ज कर दिया गया।

इस प्रकार गिरफ्तारियों का तांता बँध गया और धड़ाधड़ गिरफ्तारियां होने लगी। हिन्दू महासभा के बड़े-बड़े नेता डा० नायडू, डा० मुंजे, श्री आशुतोष लहरी, एन० सी० चटर्जी, भाई परमानन्द, राजा महेश्वरदयाल सेठ, पं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार आदि गिरफ्तार कर लिये गये। इनके अतिरिक्त सैकड़ों प्रतिनिधि और कार्यकर्त्ता भी जेल भेज दिये गये। २४ दिसम्बर को भागलपुर मे कई स्थानों पर सभायें की गई जो थोड़ी-थोड़ी देर के बाद पुलिस ने लाठी चार्ज करके तितर-बितर कर दी। २४ दिस० को केवल भागलपुर में लगभग १ हज़ार गिरफ्तारियां हुई, जो मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिये गये, वे इससे अलग हैं।

२५ दिसम्बर को स्वागताध्यक्ष और प्रधान महोदयों के भाषणों का दिन था, पर दोनों ही जेल में बन्द थे। हिन्दू महासभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी अभी कुछ दिन से ही बंगाल के अर्थ-मंत्री बने थे। इसलिये सावरकर जी ने उन्हें भागलपुर आने से रोक दिया था। किन्तु अब परिस्थिति बदल चुकी थी। सावरकर जी के जेल में बन्द हो जाने पर सारा उत्तरदायित्व डा० मुकर्जी पर ही आ पड़ा। आप अपना कर्त्तव्य समझकर भागलपुर के लिये २५ ता० को चल पड़े। आपके साथ बंगाल के कई अन्य नेता भी थे। मार्ग में इन्हें रोक कर कलकत्ता वापिस जाने के लिये पुलिस ने कहा किन्तु आप न माने। इस पर बिहार-सरकार ने आज्ञा दी कि आप २५ से २७ ता० तक बिहार मे नहीं रह सकते। आपने यह आज्ञा मानने से भी इन्कार कर दिया। फलस्वरूप आपको मौखिक आज्ञा देकर ही पुलिस ने मार्ग में ही गिरफ्तार कर रखा और भागलपुर न जाने दिया। २५ दिसम्बर को भागलपुर के स्टेशन पर पंजाब के डा० सर गोकुलचन्द नारंग भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री आदि कई नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इस दिन दोपहर तक बहुत सी गिरफ्तारियां होती रहीं। हिन्दू महासभा के प्रधान वीर सावरकर जी का आदेश था कि २५ दिसम्बर से अधिवेशन अवश्य आरम्भ हो जाना चाहिये, चाहे वह किसी स्थान पर और किसी दशा मे हो। जो नेता अभी तक जेलों से बाहिर थे, विचार कर इस निर्णय पर पहुँचे कि २५ ता० को दोपहर के पश्चात् सभायें

अवश्य की जायें और प्रत्येक सभा में प्रधान जी का भाषण और उनके भेजे हुए प्रस्ताव पढ़े जायें। देहली के लाला नारायणदत्त जी अभी तक जेल से बाहिर थे। वृद्ध होते हुए भी उनमें नव-युवकों का सा उत्साह विद्यमान है। भागलपुर में अधिवेशन करने का सारा भार लाला जी ने अपने ऊपर ले लिया। आपके उद्योग से छोटी-मोटी सभाओं के अतिरिक्त भागलपुर में नियत समय पर तीन बड़ी-बड़ी सभायें विभिन्न स्थानों पर सफलता-पूर्वक हुई। उनमें स्वागताध्यक्ष का भाषण और प्रधान जी का भाषण पढ़ने के बाद प्रधान जी के भेजे हुए प्रस्ताव पास किये गये। बाद में पुलिस ने आकर इन सभाओं को भंग कर दिया। कहते हैं भागलपुर में आज के दिन १ के स्थान पर हिन्दू महा-सभा के ५२ अधिवेशन हुए, जो शीघ्र या विलम्ब से पुलिस ने लाठी चार्ज करके भंग कर दिये और नेताओं को गिरफ्तार कर लिया।

इन सब अधिवेशनों के अतिरिक्त एक और अधिवेशन हुआ जो बहुत शान्ति के साथ होता रहा और जिसमें पुलिस ने भी कुछ हस्तक्षेप न किया। वह था भागलपुर की सेन्ट्रल जेल में अधिवेशन। इसके सभापति डा० मुंजे थे। इस अधिवेशन में हिन्दू महासभा के सब प्रान्तों के नेताओं ने भाग लिया। सब नेता जेल में ही थे। वीर सावरकर का भाषण पढ़ने के बाद प्रस्ताव पास हुए और कई नेताओं के भाषण हुए।

२६ दिसम्बर को भी प्रतिनिधियों ने कई स्थानों पर जुलूस

और सभा आदि करने के प्रयत्न किये, पर पुलिस ने लाठी-चार्ज करके तितर-बितर कर दिये। इस दिन भी ला० नारायणदत्त जी के सभापतित्व में एक सभा हो ही गई। लाला जी के साथ आज और कई नेता गिरफ्तार कर लिये गये।

२७ दिसम्बर को भी कई स्थानो पर सभाये की गई और जुलूस निकाले गये। अधिवेशन के स्थान पर झण्डा भी गाड़ा गया, पर पुलिस ने इन सबके साथ अमानुषिक व्यवहार करके इन्हें गिरफ्तार किया और डंडे बरसा कर जुलूस और सभाये भंग कीं।

सावरकर जी की आज्ञानुसार २७ दिसम्बर को अन्तिम सभा एक धर्मशाला में गुप्त रूप से की गई। इसमें लगभग २० हज़ार स्त्री पुरुष सम्मिलित थे। सभा का कार्यक्रम वन्देमातरम् के साथ समाप्त किया गया। तदनन्तर सभा की समस्त जनता लाजपतराय पार्क की ओर जुलूस बना कर चली और उस पवित्र भूमि को, जहां अधिवेशन के लिये पण्डाल बना था, दूर से ही प्रणाम कर अपने स्थान को लौट गई। पुलिस ने कोई हस्तक्षेप न किया। इस प्रकार भागलपुर का अधिवेशन समाप्त हुआ। समस्त बिहार प्रान्त और विशेषकर भागलपुर, समस्त हिन्दू संसार के धन्यवाद का पात्र है कि वहां वर्षों के सोये हुए हिन्दू उठे और संगठित हो अपने अधिकारों के लिये इतना बलिदान किया।

भागलपुर का अधिवेशन हिन्दू महासभा के इतिहास में और हिन्दू जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा, जिसमें

हिन्दुओं ने अपने अधिकारों की र.।के लिये जेल के कष्ट भोगे, पुलिस के डण्डे खाये और घोड़ों की टापों के आघात सहे। वीर सावरकर तुम धन्य हो, तुमने अपने नेतृत्व से हिन्दू जाति में यह जागृति के भाव उत्पन्न किये।



अखण्ड भारत-नेता-सम्मेलन

भारत के कुछ बड़े-बड़े नेताओं का यह विश्वास हो गया है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना भारत को स्वराज्य की प्राप्ति असम्भव है। महात्मा गांधी और कांग्रेस ने इस हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये अनेक बार प्रयत्न किये किन्तु सब में मुसलमानों की हठधर्मी और अन्याय्य मांगों के कारण उन्हें असफल ही होना पड़ा। इन नेताओं के इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि दूसरी पार्टी अपनी असम्भव मांगें बढ़ाती हुई अब पाकिस्तान पर आ पहुँची है। पाकिस्तान का अभिप्राय यह है कि भारत के दो खण्ड कर दिये जायें, एक का नाम पाकिस्तान हो और दूसरे का हिन्दुस्तान। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का शासन हो और पाकिस्तान में मुसलमानों का। सन् १९४२ में इसी पाकिस्तान का कांग्रेस ने घोर विरोध किया था और महात्मा गांधी जी ने भी इसे पाप और असत्य के नाम से घोषित किया था। किन्तु सन १९४४ में श्री राजगोपालाचार्य ने गांधी जी की अनुमति से

एक प्रस्ताव मुसलमानों के नेता मि० जिन्ना के सामने रखा, जिसमे वही सब बातें थी, जिन्हे मि० जिन्ना पहले चाहते थे। किन्तु इस बार उन्होने स्वयं प्रस्तुत की हुई शर्तों को भी मानने से इन्कार कर दिया। मि० जिन्ना की यही नीति है कि वे हठ-धर्मी से अपनी मांगो को आगे-आगे बढ़ाते ही जाते हैं। महात्मा गांधी जिस भारत-विभाजन को पाप बता चुके थे और यह कह चुके थे कि चाहे मेरे शरीर के टुकड़े हो जाये किन्तु मै भारत के टुकड़े नहीं होने दूँगा, उन्हीं महात्मा गांधी की अनुमति जब इस भारत-विभाजन के प्रस्ताव पर हो गई तो समस्त देश में एक खलबली-सी मच गई। इस प्रस्ताव पर प्रतिक्रिया तत्काल आरम्भ हो गई।

कुछ कांग्रेसी सज्जन जो केवल गांधी जी की हां में हां ही मिलाना जानते हैं और अपनी बुद्धि मे कुछ भी विचार नहीं करते, वे जिस प्रकार सन् ४२ में गांधी जी के कथनानुसार पाकिस्तान को पाप बताते थे, उसी प्रकार अब वे भी इस भारत-विभाजन को उचित बताने लगे। इनके साथ ही कुछ मि० जिन्ना के अनुयायी धर्मान्ध मुसलमान भी अपनी हठधर्मी के कारण पाकिस्तान का समर्थन कर रहे थे। किन्तु समझदार और विचारशील कांग्रेसी नेताओं ने अपने स्पष्ट विचार निर्भीकता पूर्वक प्रकट कर दिये कि पाकिस्तान राष्ट्रीय इतिहास में महान् संकट है, इससे भारत की वह अधोगति हो जायेगी जो कई पीढ़ियों तक भी सुधर न सकेगी। विचारशील और देशभक्त

मुस्लिम विद्वानों ने भी पाकिस्तान को भारत के लिये और मुसलमानों के लिये भी अहितकर बताया। हिन्दू नेताओं का तो कहना ही क्या था! एक ओर से दूसरी ओर तक सभी हिन्दुओं ने इसका घोर विरोध किया। हिन्दू महासभा के कार्यकर्ता प्रधान श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी महात्मा गांधी जी से मिले और उन्होंने उन्हें हिन्दुओं का दृष्टिकोण समझाया और बताया कि भारत-विभाजन से समस्त भारत का और विशेषकर बंगाल का सर्वनाश हो जायेगा। स्थान-स्थान पर सभायें और प्रदर्शन होकर इस पाकिस्तानी योजना का विरोध होने लगा। गांधी जी ने मि० जिन्ना से इस सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये समय मांगा और उन्होंने मिलने की स्वीकृति मांगी। हिन्दुओं ने इस मिलन का भी बहुत विरोध किया और गांधी जी से अनुरोध किया गया कि वे जिन्ना से न मिलें। क्योंकि पाकिस्तान की योजना एक हलाहल विष है। गांधी जी अपना प्रबल विरोध होता हुआ देखकर भी किसी की न माने और बम्बई में मि० जिन्ना से जा ही मिले। इक्कीस दिन तक दोनों की बातचीत हुई किन्तु परिणाम वही हुआ जो हिन्दू नेता पहिले ही कह रहे थे। मि० जिन्ना हठधर्मी पर अड़े रहे और उन्होंने वह प्रस्ताव स्वीकार न किया।

हिन्दुत्व-प्राण वीर सावरकर ने भारत-विभाजन का प्रबलतम विरोध करने के लिये देहली में अखण्ड भारत-नेता-सम्मेलन की आयोजना की। इसमें वे सब नेता निमन्त्रित किये गये जो भारत की अखण्डता में विश्वास रखते थे। नई-देहली में ७ और ८

अक्तूबर को श्री डा० राधा कुमुदमुकुर्जी के सभापतित्व में यह सम्मेलन बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। भारत के सभी प्रांतों के प्रमुख हिन्दू नेता और सैकड़ों प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। विभिन्न दलों के नेताओं ने गांधी-जिन्ना-समझौते और राजा जी की योजना के विरुद्ध भारत की अखण्डता के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट प्रकट किये। सम्मेलन में जिन नेताओं ने भाग लिया उनमें से मुख्य के नाम हैं :—सर्व श्री डा० राधा कुमुद मुकर्जी, श्री जमनादास मेहता, श्री वीर सावरकर, जगद्गुरु श्री शंकराचार्य पुरी, डा० गोकुलचन्द नारंग, मा० तारासिंह, एन० सी० चटर्जी, डा० नायडू, श्री भोपटकर, श्री बीरुमल, श्री आशुतोष लहरी और श्री खापर्डे।

इस अवसर पर वीर सावरकर ने अपने भाषण में कहा कि—प्रमुख विषय पर बिना मत-विभिन्नता के अपने-अपने विचार रखने की प्रत्येक वक्ता एवं विचारक को पूर्ण स्वतन्त्रता है। आपने यह भी कहा कि—गत ३० वर्ष से हिन्दू गलत रास्ते पर चल रहे थे, अब कहीं ठीक रास्ते पर आये है। मेरा विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति जो हिन्दुस्थान में रहता है, हिन्दू है। कांग्रेस ने अच्छा किया जो पाकिस्तान का प्रस्ताव उसने अपना लिया। अब भारतवासी जानने लग गये हैं कि भारत गीता का स्थान है कुरान का नहीं। अन्त मे आपने घोषणा की कि प्रान्तीय समितियों की सम्मति से महासभा पाकिस्तान-विरोधी मोर्चा तैयार करेगी।

इस सम्मेलन में भारत की अखण्डता के सम्बन्ध में निम्न-लिखित प्रमुख प्रस्ताव .वीकार किया गया :—

यह सम्मेलन घोषणा करता है कि भारत का भावी विधान उसकी अखण्डता और स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाय। यह भी घोषित करता है कि यदि भारत की अखण्डता को धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और भाषा सम्बन्धी किसी भी प्रकार से नष्ट करने का कोई प्रयत्न होगा तो प्रत्येक प्रकार का बलिदान और मूल्य देकर भी उसका विरोध किया जायेगा।

यह सम्मेलन भारत की अखण्डता और एकता पर पूर्ण विश्वास प्रकट करता है और अपना दृढ़ विचार प्रकट करता है कि भारत के विभाजन से देश को महान् घातक हानि पहुँचेगी। सम्मेलन प्रत्येक देशभक्त से अपील करती है कि भारत की अखण्डता को नष्ट करने का मुकाबला प्रत्येक प्रकार से करे।



'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबन्ध

मुस्लिम-लीग कराची के अधिवेशन में सत्यार्थप्रकाश को जब्त कराने का कुछ स्पष्ट सा प्रस्ताव पेश हुआ। मि० जिन्ना ने भी व्यक्त किया कि इससे हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने का भय है, जिसके कारण साम्प्रदायिक कलह की जड़ें ही केवल जमेंगी।

फिर १५-१६ नवम्बर १६४३ में दिल्ली में मुस्लिम लीग की एक कौंसिल हुई और उसमें सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया गया जिसमें भारत सरकार से जोर के साथ कहा गया कि सत्यार्थप्रकाश के वे समुल्लास जिनमें धर्म-प्रवर्त्तकों, विशेषकर इस्लाम के पैगम्बरों के बारे में आपत्तिजनक और अपमानकर बातें हैं, तुरन्त जब्त कर लिये जायें। इसके बाद सिन्ध के मंत्रि-मण्डल में से भी यह आवाज आई कि सत्यार्थप्रकाश को जब्त कर लिया जाय। फिर हिन्दुओं के विरोध को देखकर सिन्ध सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रश्न को अखिल भारतीय प्रश्न बताकर भारत-सरकार के पास भेज दिया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि आर्यसमाजी अपने धर्म ग्रन्थ पर यह आघात कैसे सहन कर सकते थे, चारों ओर हलचल-सी मच गई और सभा, प्रदर्शन, विरोध और प्रस्ताव पास होने लगे, सिन्ध के गवर्नर और भारत के वायसराय महोदय के पास तार खटखटाये जाने लगे। सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार १६-२० फर्वरी १६४४ को देहली में एक आर्यसम्मेलन किया गया जिसमें समस्त भारत के आर्यों ने बड़े उत्साहपूर्वक भाग लिया। प्रत्येक प्रकार से सत्यार्थप्रकाश की रक्षा और प्रचार करने का निश्चय किया गया। सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के लिये तीन लाख रुपया एकत्रित करने का संकल्प हुआ। साथ ही सरकार को चुनौती दी गई कि यदि उसने सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध कुछ भी कदम उठाया तो उसे भी आर्यों का घोर मुकाबला करने के लिये कटिबद्ध रहना चाहिये।

आर्यों का जोश और प्रबल उत्साह तथा घोर विरोध देखकर या उनके सुदृढ़ संगठन से भयभीत होकर सिन्ध की सरकार ने तो यह घोषणा कर दी कि वह सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में अब कोई कदम न उठायेगी। मामला कुछ शान्त हुआ, दिन बीते और आर्यों का उत्साह भी कम होने लगा। फिर अकस्मात् बिना किसी हिन्दू मन्त्री से सलाह किये ही सिन्ध सरकार की ओर से ४ नवम्बर को आज्ञा निकली कि सत्यार्थप्रकाश की तब तक कोई प्रति न छापी जाय जब तक उसमें से चौदहवें समुल्लास को न हटा दिया जाय। इस आज्ञा को सुनकर आर्य जगत में फिर एकदम जोश की लहर दौड़ गई। अपने आचार्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ का सिन्ध सरकार द्वारा अपमान कैसे सहा जाय? पहिले से भी अधिक जोश फैल गया। २० नवम्बर को सार्वदेशिक सभा की एक ऐतिहासिक बैठक हुई जिसमें ६ घण्टे के वाद-विवाद और विचार-विनिमय तथा गंभीर चिन्तन के पश्चात् इस अन्याय पूर्ण आज्ञा को रद्द करवाने तथा अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त को पूर्ण अधिकार दिया गया कि वे एक कमेटी मनोनीत करें जिसे इस सम्बन्ध में सब उचित और आवश्यक कार्यवाही करने के लिये पूर्ण अधिकार होंगे। सभा ने आर्य जनता को विश्वास दिलाया कि धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये कोई भी प्रयत्न छोड़ा नहीं जायेगा और प्रत्येक बलिदान के लिये उद्यत रहा जायेगा।

हिन्दू जाति के निःस्वार्थ सेवक श्री भाई परमानन्द जी ने केन्द्रीय असेम्बली मे सिन्ध-सरकार द्वारा सत्यार्थप्रकाश पर लगाई गई पाबन्दी की निन्दा की और इसे भारत रक्षा कानून का दुरुपयोग बतलाया। भाई जी के स्थगित प्रस्ताव पर बहस हुई। कांग्रेसी सदस्य धीरे-धीरे वहां से खिसक गये और उन्होंने भाई के पक्ष में अपनी सम्मति नहीं दी। यद्यपि यह प्रस्ताव असेम्बली में पास न हो सका किन्तु फिर भी समस्त भारत और सरकार का ध्यान इस प्रश्न की ओर आकर्षित हो गया और यह प्रश्न सबकी चर्चा का विषय बन गया। सब हिन्दू नेता और विचार-शील कांग्रेसी नेता भी सिन्ध सरकार की आज्ञा का विरोध करने लगे। महात्मा गांधी ने भी इस आज्ञा को अनुचित बतलाया। यहीं तक नहीं, कुछ निष्पक्ष मुसलमानों ने भी इस पाबन्दी को धार्मिक अत्याचार और पाप कहकर इसका विरोध किया।

हमारे चरित्रनायक वीर सावरकर ने इस सम्बन्ध में भारत के वायसराय और सिन्ध गवर्नर के नाम तार दिये, जिनके आशय निम्नलिखित हैं :—

वायसराय को तार

सत्यार्थप्रकाश पर जो कि हिन्दुओं की तथा विशेषकर आर्यों की आदरणीय पुस्तक है, सिन्ध सरकार द्वारा प्रतिबन्ध अवश्य ही साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न करेगा। मैं केन्द्रीय सरकार से अनुरोध करता हूँ कि वह इस प्रतिबन्ध को तत्काल ही रद्द कर दे। पत्येक धार्मिक पुस्तक को दूसरों के धर्मों की आलोचना

करनी ही पड़ती है। यदि एक सम्प्रदाय की धर्म पुस्तक पर इस आधार पर प्रतिबन्ध लगाया गया है तो कुरान के विरुद्ध भी हिन्दुओं द्वारा आन्दोलन उठ खड़ा होगा और यहूदियों द्वारा न्यूटैस्टामैण्ट पर तथा शियों द्वारा सुन्नियों के विरुद्ध। किसी भी सभ्य तथा न्यायकारी केन्द्रीय सरकार का यह कर्त्तव्य है कि ऐसी कट्टरता को रोक दे और एक दूसरे के प्रति समभाव का प्रदर्शन करे। ऐसा समभाव जिसके अर्थ हैं कि समस्त धर्मों के प्रति सब सम्प्रदाय सद्भावना रखें और समस्त नागरिकों को यह स्वतन्त्रता हो कि वे शान्ति और उदारता की सीमा के अन्दर अपना अपना धर्म स्वतन्त्र रूप से मान सकें।

सिन्ध-गवर्नर को तार

कृपया अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा कीजिये और सत्यार्थ प्रकाश पर, चाहे उसके किसी एक भाग पर और चाहे समस्त पुस्तक पर, प्रतिबन्ध को हटा दें। धार्मिक पुस्तकों के लिये सद्भावना और लोगों को किसी धर्म में विश्वास करने की स्वतन्त्रता ही सभ्य और न्यायकारी सरकार का मौलिक सिद्धान्त होना चाहिये। सत्यार्थ प्रकाश हिन्दुओं और विशेषकर आर्यों की धर्म पुस्तक है। उस पर प्रतिबन्ध के अर्थ यही होंगे कि हिन्दू भी कुरान के कुछ भागों के विरुद्ध आन्दोलन करें। यह धार्मिक विष यदि सिन्ध में से जड़ से दूर न किया गया तो यह समस्त भारत में फैल जायेगा और मस्जिद के सामने बाजे के प्रश्न के

समान सदैव ही साम्प्रदायिक झगड़े करवाता रहेगा। कृपया इस द्वेषपूर्ण प्रतिबन्ध को तत्काल ही हटा लें।

वीर सावरकर ने केवल ये तार देकर ही विश्राम नहीं पा लिया किन्तु वे इस सम्बन्ध में वायसराय महोदय से २७ नवम्बर को स्वयं भी मिले और उन्होंने उनसे कहा कि धर्म की समस्त पुस्तकें—चाहे पुराण अथवा कुरान सबकी सब आज से भिन्न अलग-अलग वातावरण में लिखी गई हैं। अतः सब में एक दूसरे के प्रति आलोचना पाई जाती है। आज जबकि प्रत्येक व्यक्ति नागरिक विधान के आधीन है तब धर्म की नींव परस्पर विशाल हृदयता पर होनी चाहिये। अतः सत्यार्थ प्रकाश पर से पाबन्दी यथाशीघ्र हटनी चाहिये।

सावरकर जी के हृदय में हिन्दुत्व के प्रति प्रेम और अगाध श्रद्धा है, यही कारण है कि जब कभी हिन्दुओं के धार्मिक और नागरिक अधिकारों पर कहीं भी कुछ आघात होने लगे तो आप जीजान से उसके दूर करने का प्रयत्न करते हैं।



वीर सावरकर द्वारा

हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशनों पर

दिये गये

भाषणों का सार

१. अहमदाबाद	सन् १९३७ ई०
२. नागपुर	सन् १९३८ ई०
३. कलकत्ता	सन् १९३९ ई०
४. मदुरा	सन् १९४० ई०
५. भागलपुर	सन् १९४१ ई०
६. कानपुर	सन् १९४२ ई०
७. अमृतसर	सन् १९४३ ई०

अहमदाबाद (सन् १६३७ ई०)

प्रारम्भ में आभार प्रदर्शन और स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य नेपाल का अभिवादन करते हुए वीर सावरकर ने अपना भाषण इस प्रकार प्रारम्भ किया :—

हिन्दुस्थान सर्वदा एकरस एवं अविभाज्य ही रहना चाहिये।

वर्त्तमान समय में भारतवर्ष पर जो कृत्रिम एवं राजनैतिक बलात्कार जनित प्रान्तीय बटवारा लादा गया है उसके विचार को अलग हटाया जाय, तो हम पर यह बात स्पष्ट होगी कि हम सब रक्त, धर्म तथा देश इन प्रबल, अविभाज्य एवं टिकाऊ बन्धनों के द्वारा परस्पर के साथ जकड़े गये हैं। चाहे जो हो, हमें अपना ध्येय समझकर इस बात को निश्चित रूप से विघोषित कर देना चाहिये कि कल का हिन्दुस्थान कश्मीर से लेकर रामेश्वर तक और सिन्धु से लेकर आसाम तक केवल संयुक्त होने के नाते से ही नही, अपितु अभिन्न राष्ट्र के नाते से एकरस एवं अविभाज्य ही रहना चाहिये।

'हिन्दू' शब्द की व्याख्या

हिन्दू महासभा के नियत तथा अधिकृत कार्य की सारी वाह्य सृष्टि 'हिन्दू' शब्द की अचूक व्याख्या पर ही निर्भर है।

इसलिये सबसे पहिले हमे 'हिन्दुत्व' के अर्थ ही को प्रकट करना चाहिये। उस शब्द की व्याख्या और व्याप्ति का स्पष्टीकरण हो कर जब वह सुचारु रूप से हृदयसात हो जायेगी, तभी हमारे स्वकीयों के हृदयों में बार-बार उठने वाली विविध प्रकार की आशंकाओं का निराकरण होगा और हमारे विरोधक हमारे विरोध में जो नाना प्रकार के आक्षेप एवं भ्रम लोगों में प्रसृत करते हैं, उन्हें भी मुंहतोड़ उत्तर मिलकर शान्त किया जा सकेगा। यह हमारा अतीव सद्भाग्य है कि कई जंगलों की राख छान डालने के उपरांत ही क्यों न हो, किन्तु इस प्रकार की 'हिन्दू' शब्द की एक निश्चित व्याख्या पहिले ही हमारे हाथ लगी है। ऐतिहासिक तथा तार्किक दृष्टि से इस प्रकार की व्याख्या जहां तक समर्थक की जा सकती है, उतनी समर्थक तो वह है ही; पर उसके अतिरिक्त वह तात्कालिक उपयोगक्षमा भी है। हिन्दू शब्द की वह व्याख्या इस प्रकार है :—

आसिन्धुसिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

अर्थात्—

जो कोई भी व्यक्ति सिन्धु से लेकर समुद्र तक फैली हुई इस भारत भूमि को अपनी पितृभू तथा पुण्यभू मानता है और अधिकृत रूप से यह बात कह सकता है, वह प्रत्येक व्यक्ति 'हिन्दू' है।

यहां पर मुझे यह बात स्पष्ट कर देनी होगी कि जिन धर्मों का उद्गम भारतवर्ष में हुआ है, ऐसे कुछ अन्य धर्मों के अनु-

यायी समझे जाने वाले व्यक्तियों को भी हिन्दू कहना प्रायः असम्बद्ध ही होगा। क्योंकि वह तो हिन्दुत्व का एक अंग या लक्षणमात्र है। पर यदि हमारी यह आन्तरिक इच्छा हो, कि हमारी उक्त व्याख्या संदिग्ध एवं मिथ्या प्रमाणित न हो, तो हमें चाहिये कि 'हिन्दुत्व' के अन्तर्गत संकेत में रहे हुए दूसरे और उतने ही महत्त्व के दूसरे अंश की अवहेलना हम न करें। हिन्दू होने के लिये किसी व्यक्ति को केवल इतना ही कहना पर्याप्त न होगा, कि वह किसी ऐसे धर्म का अनुगामी है, जिसका उद्गम भारतवर्ष में हुआ है, अर्थात वह भारतवर्ष को अपनी 'पुण्यभू' मानता है। उसके हिन्दू होने के लिये यह भी आवश्यक है कि वह इस देश को अपनी पितृभू भी माने। मेरा आज का यह भाषण ऐसा स्थल नहीं, जहां पर इस प्रश्न का सांगोपांग विवेचन किया जा सके; इसलिये इस विषय की अधिक जानकारी के लिये मैं अपने 'हिन्दुत्व' पुस्तक की ओर संकेत करता हूँ। उस पुस्तक में इस सम्बन्ध के सारे विधान युक्तियुक्त रूप से उद्धृत किये गये हैं और बहुत विस्तारपूर्वक इस प्रश्न का विवेचन भी किया गया है। प्रस्तुत प्रसंग पर तो केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा, कि समूचा हिन्दू जगत् जहां पर उसके धर्म का जन्म हुआ, उसी अकेले पुण्यभू के एकमात्र बन्धन से ही केवल नहीं, किन्तु एक संस्कृति, एक भाषा, एक इतिहास और इससे भी अधिक महत्त्व की बात यानी एक 'पितृभू' के भी बन्धन से स्वयमेव निबद्ध है और इन्हीं बन्धनों के कारण वह एक स्वयंसिद्ध राष्ट्र

तथा स्वतन्त्र लोकसमाज प्रमाणित होता है। उक्त दोनों अंशों को एकत्र करने पर ही हमारे हिन्दुत्व की सृष्टि होती है और उनके संयोग से ही हम संसार के अन्य किसी भी देश के निवासियों से पृथक् प्रमाणित होते हैं। उदाहरण के लिये जापानी तथा चीनी लोग अपने को हिन्दुओ के साथ सम्पूर्ण रूप से न तो एकात्म मानते ही हैं और न वे उक्त कारणों से वैसा मान भी सकते हैं। वे दोनों इस भारत भूमि को उनके धर्म के जन्मस्थान के नाते से केवल अपनी पुण्यभू मानते है, वे न तो उसे अपनी पितृभू मानते हैं और न वे ऐसा मान ही सकते हैं। अतः वे हमारे सहधर्मीय तो अवश्य ही हैं, पर न तो वे हमारे स्वदेश बान्धव हैं और न हो ही सकते हैं। परन्तु निस्सन्देह हम सारे हिन्दू परस्पर के केवल सहधर्मीय ही नहीं, अपितु स्वदेश बान्धव भी हैं। चीनी तथा जापानियो को अपनी अपनी निजी और पृथक् स्वरूप की वंश परम्परा. भाषा, संस्कृति, इतिहास तथा देश आदि बातें हैं, जो उनका और हमारा जीवन एक राष्ट्रीय बनाने के लिये हमारे साथ पूर्ण अंशों मे निबद्ध नहीं हुई है। हिन्दुओं के धार्मिक सम्मेलन में—किसी हिन्दू धर्म महासभा में—वे पुण्यभूमि की एकता के कारण हमारे धर्म बान्धवो के नाते से हमारे गले लग सकते हैं। किन्तु समूची हिन्दू जाति को एकत्रित करने वाली और उसके राष्ट्रीय जीवन का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाली किसी हिन्दू महासभा के सम्बन्ध में वे समान स्वरूप की आस्था नहीं दिखायेंगे और न वे समानतापूर्वक उसमें

अपना हाथ बँटायेंगे क्योंकि वह ऐसा कर ही न सकेंगे। किसी भी शब्द की व्याख्या ऐसी होनी चाहिये, जो वस्तु-स्थिति पर अच्छी तरह चिपक जाये। उक्त व्याख्या के प्रथम अंश की यानी अनन्य पुण्यभू होने की कसौटी पर कसने के बाद जिस तरह हिन्दुस्थान में वास करने वाले मुसलमान, ज्यू, क्रिश्चियन तथा पारसी आदि विधर्मी केवल हिन्दुस्थान ही को अपनी पितृभूमि मानते हुए भी अपने आपको हिन्दू कहलाने के अधिकार से वंचित रहते हैं उसी प्रकार दूसरी ओर उसके 'अनन्य पितृभू होना' इस दूसरे अंश की कसौटी पर कसने के उपरान्त जापानी, चीनी आदि अन्य देशवासियों को भी हमारी और उनकी पुण्यभू एक होते हुए भी हिन्दूगुट्ट के बाहिर ही रहना पड़ता है। उक्त व्याख्या का स्वीकार नागपुर, पूना, रत्नागिरि आदि स्थानों की हिन्दू सभाओं के अनुसार अनेक प्रमुख हिन्दू सभायें भी पहिले ही कर चुकी हैं। हिन्दू महासभा के प्रचलित विधिविधान में 'हिन्दू' शब्द का 'वह कोई भी व्यक्ति जो अपने आपको हिन्दुस्थान में पैदा हुए किसी भी धर्म का अनुगामी कहलाता हो' इस प्रकार का जो ढीला और असम्बद्ध स्पष्टीकरण किया गया था, उस समय भी उसकी आंखों के सामने उक्त व्याख्या स्पष्ट रूप से उपस्थित थी। पर अब ऐसा समय आ पहुँचा है, कि जब हमें अधिक सुसम्बद्ध बनने की आवश्यकता है। अतः उक्त एकांगी व्याख्या का त्याग कर उसके स्थान में अधिक व्यवस्थित तथा समर्पक व्याख्या की स्थापना करनी चाहिये और इसलिये

मैं आप लोगों के सामने यह प्रस्ताव रखता हूं कि हमारे विधि विधान में उपर्युक्त पूरा श्लोक ज्यों का त्यों उसके उपर्युक्त स्प तथा निस्सन्दिग्ध अर्थ सहित समाविष्ट किया जाना चाहिये।

हिन्दू स्वयमेव एक राष्ट्र हैं

आगे चलकर आपने बताया कि—हिन्दू महासभा के निय कार्य के सम्बन्ध में जैसी मेरी धारणा है, उस तरह से प्रमु रूप से एक राष्ट्रीय सभा ही मानने सम्बन्धी मेरी भूमिका पर कु लोग व्यर्थ का दोषारोपण करेंगे और आह्वान पूर्वक मुझ से य प्रश्न भी पूछ बैठेंगे कि जिनके जीवन की प्रत्येक छोटी-मोट बातों में इतना महदन्तर पाया जाता है, उन हिन्दुओं को ह राष्ट्र के नाम से सम्बोधित कर ही कैसे सकते हैं ? इन लोगों क मेरा स्पष्ट रूप से यही प्रत्युत्तर है कि पृथ्वीतल पर ऐसा कोई दे नहीं, कि जिसमें भाषा, संस्कृति, वंश तथा धर्म के सम्बन्ध सम्पूर्ण रूप की एकात्मता दिखाई देती हो। किसी भी देश क जनता उसमें रहे हुए परस्पर विसंवादी भेदों के अभाव के कार राष्ट्रसंज्ञा से सम्बोधित होने के लिये कदापि उतनी पात्र प्रमाणि नहीं होती, जितनी कि वह परस्पर में रहे हुए भेदों की अपेक्ष अन्य लोगों के साथ रहीं हुई उसकी सुस्पष्ट रूप की भिन्नता के कारण होती है। हिन्दुओं को राष्ट्र के नाम से पुकारने में ज लोग आनाकानी करते हैं, वे ही ग्रेट ब्रिटेन, युनाइटेड स्टेट्स रूस, जर्मनी तथा अन्य देश के निवासियों को राष्ट्र के रूप मानते ही हैं। उनसे मैं पूछता हूँ कि उन लोगों को भी ज

स्वयमेव राष्ट्र के रूप में समझा जाता है, उसकी क्या कसौटी है ? उदाहरण के लिये ग्रेट ब्रिटेन ही लीजिये। चाहे जो हो उनमें तीन विभिन्न भाषायें तो हैं ही। गतकाल में उनमें परस्पर के साथ प्राणघातक युद्ध छिड़ गये हैं। साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि उनमें विभिन्न बीजों का, लहू का और जातियों का संकर भी हो गया है। अर्थात् ऐसी स्थिति होते हुए भी जब आप लोग उन्हें इस समय एक देश, एक भाषा, एक संस्कृति एवं अनन्य पुण्यभूमि होने ही के नाते से एक राष्ट्र मानते हैं, तब तो वे हिन्दू भी इसी प्रकार से समान जीवन तथा समान निवसन के युगानुयुग व्यतीत होने के कारण परस्पर के साथ समरस बन बैठे हैं, जिनके लिये हिन्दुस्थान इस यथार्थ वाचक नाम की अनन्य पितृभूमि है, जिसमें उनकी उन सारी प्रचलित भाषाओं का उद्गम हुआ है जो दिनोंदिन परिपुष्ट होती जाती हैं. जिनके पास संस्कृत नामक ऐसी एक समान भाषा है, जो आज भी उनके धर्मग्रन्थों की तथा साहित्य की सर्वसाधारण भाषा मानी जाती है और प्राचीन धर्म शास्त्रों तथा उनके पूर्वजों की सूक्तियों के पवित्रतम संग्रह के नाते जिसका सर्वत्र गौरव किया जाता है। अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहों के द्वारा जिनका बीज तथा रक्त मनुजी के समय से लेकर आज दिन तक लगातार परस्पर में सम्मिश्र होता आया है, जिनके सामाजिक उत्सव तथा संस्कार-विधि इंगलैण्ड में दिखाई देने वाले संस्कारों एवं विधियों से समानता में लेशमात्र भी कम नही हैं, वैदिक ऋषि जिनके लिये

एकसा अभिमान का विषय है, पाणिनि और पतंजलि जिनके व्याकरणकार हैं, भवभूति तथा कालिदास जिनके कविवर हैं, श्रीराम तथा श्रीकृष्ण, शिवाजी तथा राणा प्रताप, गुरु गोविन्द तथा वीरवर बन्दा जिनकी वीर विभूतियां एवं समान स्फूर्तिस्थान हैं,—बुद्ध तथा महावीर, कणाद तथा शंकराचार्य, जिनके ऐसे अवतारी आचार्य है जिनको तत्त्ववेत्ता होने के नाते से सर्वत्र समानतापूर्वक सम्मानित किया जाता है, अपनी प्राचीन तथा पवित्र संस्कृत भाषा के अनुसार ही जिनकी अन्यान्य लिपियां भी उस एकमात्र प्राचीनतम नागरी लिपि में से ही उत्पन्न हुई हैं, जो कि गत कई शताब्दियों से उनके पवित्रतम लेखों की समान साधन बन बैठी हैं, जिनका प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास एक ही है, जिनके मित्र तथा शत्रु भी एक ही हैं, जिन्होंने एक ही सी आपत्तियों का सामना किया है और एक साथ ही उन पर विजय भी पायी है, और जो राष्ट्रीय वैभव में या राष्ट्रीय उत्पात में, राष्ट्रीय निराशाओं मे या राष्ट्रीय आशा—आकांक्षाओं में भी एक बने रहे हैं। पर इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि एक समान पितृभू तथा एक समान पुण्यभू के इस प्रियतम, पवित्रतम और सबसे अधिक चिरकालिक दुहरे बन्धनों मे हिन्दू परस्पर के साथ बँध गये हैं और इसके अतिरिक्त ये दोनों बन्धन—ये दोनो विष्ठान अपनी भारतभूमि—अपना यह हिन्दुस्थान इसी एकमात्र देश में एकरूपता प्राप्त करते हैं, इस कारण से हिन्दू जाति की एकता तथा एक जातीयता द्विगुणित रूप से प्रमाणित होती

है। नीग्रो, जर्मन तथा एंग्लो सैक्सन इस परस्पर में हमेशा झगड़ने वाली जमातों में से बसी हुई और केवल चार-पांच शताब्दियों से अधिक जिसका समान भूतकाल नहीं है ऐसी अमेरिका के संयुक्त संस्थान जब कि एकत्रित रूप से एक राष्ट्र के नाम से सम्बोधित किये जा सकते हैं, तब हिन्दू जाति को भी उसकी अत्युच्च प्रतिष्ठा के कारण ही से राष्ट्र के नाम से उल्लिखित किया जाना आवश्यक है। वास्तव ही में हिन्दू समाज में रही हुई परस्पर पृथकता को छोड़कर यदि एक स्वतन्त्र लोक-समाज की दृष्टि से देखा जाये तो वह पृथ्वीतल अन्य किसी भी लोकसमाज से बहुत स्पष्ट व ऊँचे अनुपात में पृथक् प्रतीत होता है। एक देश, एक वंश, एक धर्म, एक भाषा इनमें से जिन-जिन कसौटियों पर कसने पर कोई भी लोकसमाज राष्ट्र बनने के लिये पात्र समझा जाता है वे सारी कसौटियां हिन्दू जाति का राष्ट्र के नाते का रहा हुआ अन्य किसी से भी अधिक प्रबल अधिकार डंके की चोट पर प्रस्थापित करती हैं। इसके साथ ही साथ वे सारे भेदभाव भी कि जो आज तक हिन्दुओं में परस्पर फूट को फैला रहे थे, राष्ट्रीय भावना की पुनर्जागृति एवं वर्तमान समय में चलाये जाने वाले संगठन, सामाजिक सुधार आदि जैसे आन्दोलनों के कारण शीघ्र गति से विलीन हो रहे हैं।

अतएव जबकि इस हिन्दूसभा ने जैसा अपने विधिविधान में स्पष्ट रूप से प्रकट किया है, हिन्दू राष्ट्र की प्रगति तथा वैभवोत्कर्ष की साधना करने के लिये हिन्दू जाति, हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू

नागरिकता का पोषण, रक्षण तथा पुरोनयन का कार्य अपने सामने रखा है, तब उस दशा में वह सामवायिक हिन्दू राष्ट्र की प्रतिनिधिभूत एक राष्ट्रीय संस्था ही प्रमुख रूप से प्रमाणित होती है।

हिन्दुस्थान का 'स्वराज्य' या 'स्वातन्त्र्य' इन शब्दों का वास्तव में क्या अर्थ है ?

अपने भाषण को जारी रखते हुए आगे सावरकर जी ने बताया कि—सामान्य संभाषण में 'स्वराज्य' इस शब्द का अर्थ, हमारे देश की—हमारी भूमि की—राजनीतिक मुक्तता, हिन्दुस्थान नाम से पुकारे जाने वाले भौगोलिक परिणाम की स्वाधीनता इसी प्रकार समझा जाता है। किन्तु अब ऐसा समय आ उपस्थित हुआ है कि जब हमें उपर्युक्त वाक्यों का पूर्ण रूप से पृथक्करण करके उनके अन्दर रहे हुए गूढ़ अर्थ को समुचित रूप से समझ लेना चाहिये। कोई भी देश या भौगोलिक परिणाम कुछ अपने आप ही राष्ट्र नहीं बन जाता। अपना देश अपनी जाति का, अपने लोगों का, अपने प्रियतम तथा निकट सम्बन्धी आप्त स्वकीयों का निवासस्थान होता है, इसी से वह हमारा प्यारा होता है और इसी दृष्टि से केवल आलंकारिक भाषा ही में हम उसका 'हमारा राष्ट्रीय अस्तित्व' इन शब्दों के द्वारा निर्देश करते हैं। अर्थात् हिन्दुस्थान की स्वाधीनता इसका अर्थ भी हमारे लोगों की, हमारी जाति की, हमारे राष्ट्र की स्वाधीनता इसी प्रकार होगा। इसीलिये 'हिन्दी स्वराज्य' अथवा 'हिन्दी स्वाधीनता' इस

शब्द प्रयोग का अर्थ भी हिन्दू राष्ट्र के साथ उसका जहां तक सम्बन्ध है, वहां तक तो भी हिन्दुओं की राजनीतिक स्वाधीनता— हिन्दुओं को अपने पूरे विकास एवं उत्कर्ष के लिये समर्थ बनाने वाली वियुक्तता, यही होगा।

मुसलमानों के अराष्ट्रीय विचार

सावरकर जी ने मुसलमानों के विचारों के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा कि—इसे हिन्दू जाति का सौभाग्य कहिये कि मि० जिन्ना तथा अन्य मुस्लिम लीग वालों ने इस साल मुस्लिम लीग की लखनऊ की बैठक में जान बूझकर ही अपने अन्तःस्थ उद्देश्यों को पहिले से अधिक अधिकृत रूप से, अधिक प्रकट रूप से, तथा अधिक धैर्यपूर्वक कह सुनाये हैं। इसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। साथ रहने में सन्देहजनक मित्र की अपेक्षा प्रकट शत्रु अधिक होता है। लखनऊ में जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये वे वास्तव में हम लोगों के लिये कुछ नई बात नहीं है। किन्तु अब तक मुसलमानों की अराष्ट्रीय प्रकृति तथा उनकी सर्व मुस्लिमीकरण की आकांक्षायें प्रमाणित करने का भार अल्प-अधिक अनुपात में हिन्दुओं पर ही था, सो अनायास ही उतर गया। अब मुसलमानों की वे सब हिन्दू विरोधक, हिन्दी विरोधक तथा बहिर्देशीय कार्यवाहियां सुस्पष्ट कर दिखलाने के लिये केवल लखनऊ की बैठक में किये गये लीग के अधिकृत भाषणों तथा प्रस्तावों की ओर अंगुली निर्देश कर देने से ही काम हो जायेगा।

उससे अधिक कुछ करने-धरने की अब आवश्यकता नहीं रह गई है। उनकी इच्छा है कि विशुद्ध उर्दू ही हिन्दी राज्य की राष्ट्रभाषा की पदवी को प्राप्त करे। अपनी मातृभाषा के नाते से दो करोड़ से अधिक मुसलमानों वह बोली नहीं जाती, मुसलमानों को भी मिलाकर भारत के लगभग बीस करोड़ लोग उसे समझ नही सकते और जिस हिन्दी भाषा को लगभग सात करोड़ लोग अपनी मातृभाषा मानते हैं और इनके अतिरिक्त दस करोड़ लोग जिसे सुगमता से समझ सकते हैं, उससे साहित्यिक गुण भी उसमें विशेष रूप से पाये नहीं जाते। किन्तु इनमें से किसी एक भी बात की ओर वे ध्यान देना नही चाहते। जिसके आधार पर उर्दू परिपुष्ट हुई है, उस प्रत्यक्ष अरबी भाषा को जबकि उधर खिलाफ़त की साक्षात भूमि में ही कमालपाशा ने तथा तुर्कों ने बहिष्कृत कर रखा है; तब इधर मुसलमान लोग यह इच्छा कर रहे हैं कि लगभग पच्चीस करोड़ हिन्दू उर्दू सीखें और अपनी राष्ट्रभाषा के रूप में उसको स्वीकार करें। राष्ट्रीय लिपि के सम्बन्ध में भी उनका यही आग्रह है कि उर्दू लिपि ही राष्ट्रलिपि बने, किन्तु इस सम्बन्ध में चाहे जो हो, नागरी लिपि के साथ उन्हें कोई कर्त्तव्य नही! यह क्यों? वर्त्तमान राष्ट्रीय आवश्यकता की दृष्टि से अनुपयुक्त होने के कारण कमाल ने चाहे प्रत्यक्ष अरबी लिपि का ही बहिष्कार क्यों न कर दिया हो, नागरी लिपि अधिक शास्त्र शुद्ध तथा अधिक मुद्रणक्षम भी क्यों न रही हो, सीखने के लिये वह कितनी ही अधिक सहज भी क्यों न हो,

भारतवर्ष की लगभग पच्चीस करोड़ जनता में वह पहिले ही से प्रचलित क्यों न रही हो और पहिले ही से वह उनकी समझ में भी क्यों न आती हो, किन्तु फिर भी मुसलमान लोग उर्दू को अपनी सांस्कृतिक बपौती मानते हैं, केवल इसी एक गुण के कारण उनका आग्रह है कि उर्दू लिपि ही राष्ट्र की लिपि और उर्दू भाषा ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिये और इसके साथ ही साथ उन्हें वह स्थान प्राप्त हो इसलिये भारतवर्ष में रहने वाले हिन्दू तथा अन्य मुसलमानेतर जातियों की संस्कृतियां पाताल में धँस जानी चाहियें। आजकल तो मुसलमानों को 'बन्देमातरम्'. यह राष्ट्रगीत भी असह्य-सा हो उठा है। बेचारे एकता की चिन्ता करने वाले हिन्दू! उन्होंने तुरन्त ही काट पीटकर उसे ओछा करने की त्वरा की। पर आज्ञानुसार काटपीट करने के बाद भी यह बात नहीं कि बचे हुए भाग को वह स्वीकार करेंगे। आप यदि उस सारे गीत को अलग हटाकर केवल 'बन्दे मातरम्' इतने ही शब्द क्यों न रखें, किन्तु उस पर भी वे लोग यह हमारा घोर अपमान है, इस प्रकार का होहल्ला मचाते हुए दिखाई देंगे। किसी अत्युदार रवीन्द्र के हाथों आप किसी नये गीत की ही रचना क्यों न करा लें, किन्तु फिर भी मुसलमान उसकी ओर झूंक कर भी न देखेंगे। क्योंकि चाहे कितने ही उदार क्यों न हों, किन्तु रवीन्द्र बाबू अन्त में हिन्दू ही तो ठहरे! इसलिये 'कौम' के स्थान में 'जाति' अथवा 'पाकस्तान' के स्थान में 'भारत' वा 'हिन्दुस्थान' इस प्रकार के कुछ संस्कृत शब्दों को

उपयोग में लाने का घोरतम अपराध उनके हाथों हो जाना अवश्यम्भावी है। उसका समाधान तब तक नहीं हो सकता, कि जब तक किसी इकबाल या स्वयं जिन्ना का ही शुद्ध उर्दू में विरचित तथा भारतवर्ष को एक पाकिस्तान—अर्थात् मुस्लिम अधिराज्य के लिये समर्पित भूमि मानकर उसका जय जयकार करने वाला कोई गीत राष्ट्रगीत माना जाये।

वास्तविक एकता तो, जब मुसलमानों को उसकी आवश्यकता होगी, तभी हो सकेगी !

यह बात हिन्दुओं को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये, कि मुसलमानों की इस कुचाल का कारण केवल यही है कि हिन्दुओं को ही हिन्दू-मुस्लिम एकता रूपी पिशाच दीपिका के पीछे पड़ने की लगन लगी हुई है। जिस दिन हमने उनके मन में यह भ्रम पैदा कर दिया कि हिन्दुओं के साथ सहयोग करने का उपकार जब तक वे नहीं करते, तब तक स्वराज्य का मिलना असम्भव है, उसी दिन से हमारे सम्माननीय समझौते को सर्वथा असम्भव-नीय कर बैठे हैं। जब कभी किसी देश की कोई प्रचण्ड बहु-संख्या वाली जाति मुसलमानों जैसी विरोधी अल्पसंख्या वालों के सामने घुटने टेककर अभ्यर्थना पूर्वक सहायता की याचना करने लगती है और उसे यह विश्वास दिलाती है, उसके अभाव में अपनी बहुसंख्या वाली जाति निश्चित रूप से मर मिटेगी तो उस दशा मे यदि वह अल्पसंख्या वाली जाति अपनी उस

सहायता को जहां तक हो सके अधिक से अधिक दामों में न वेचे, उस बहुसंख्या वाली जाति की उक्त निश्चित रूप की मृत्यु के भवितव्य को शीघ्रतापूर्वक खींचकर वह सन्निकट न लाये और इस प्रकार यदि वह अपना राजनीति वर्चस्व उस देश में प्रस्थापित न करे तो वह एक महान् आश्चर्य ही होगा। समय-समय पर मुसलमान हिन्दुओं को परिणाम के सम्बन्ध में जो धमकियां देते हैं, वह केवल इतनी ही कि उनकी अराष्ट्रीय एवं विक्षिप्त स्वरूप की मांगें तत्काल पूरी हुए बिना वे हिन्दी स्वाधीनता के झगड़े में हिन्दुओं के साथ अपना हाथ न बटायेंगे। हिन्दुओं को भी चाहिये कि वे अब उनकी उक्त धमकी के मुँहतोड़ उत्तर में सुस्पष्ट रूप से यह कह डालें, कि दोस्तो! हमें केवल इसी प्रकार की एकता की आवश्यकता थी, अब भी है, जिसके द्वारा ऐसे हिन्दी राज्य का निर्माण हो, जिसमें जाति, पन्थ, वंश वा धर्म का विचार न करते हुए सारे नागरिकों के साथ 'एक मनुष्य एक मत' वाले तत्त्व पर सम समान रूप से व्यवहार किया जायेगा। इस देश में यद्यपि हम लोग बहुसंख्या वाले हैं, तो भी हिन्दू जगत् के लिये हम कोई विशेष अधिकार नहीं मांगते। इतना ही नहीं, अपितु यदि मुसलमान इस प्रकार का अभिवचन दें कि अपने-अपने गृहों में अपने-अपने मार्गों का अनुसरण करने के सम्बन्ध में भारतवर्ष की अन्य जातियों को रही हुई समान स्वाधीनता में वे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करेंगे, तो हमें भी उन्हें इस प्रकार का आश्वासन देना स्वीकार है कि

उनकी भाषा, उनकी संस्कृति तथा उनके धर्म को विशेष संरक्षण दिया जायेगा। वे खूब समझ रखें कि इधर कुछ दिन से आक्रमण-कारी तथा संरक्षक सन्धियों के द्वारा परस्पर के साथ बँधे हुए अरबस्तान से लेके अफगानिस्तान तक के मुसलमान राष्ट्रों की शृंखलाबद्ध श्रेणी बनाकर 'सर्व इस्लामीकरण' के आन्दोलन का जो हिन्दू विरोधी आन्दोलन हो रहा है और धार्मिक तथा सांस्कृतिक द्वेष से प्रेरित होकर हिन्दुओं के कुचल देने की जो क्रूरतापूर्ण प्रवृत्ति वायव्य सीमांत प्रदेश की जमाअतों में पाई जाती है, उन्हें हम भली भांति जान गये हैं और इसलिये अब हम आप लोगों का विश्वास कर और कोई कोरे चेक आपको न देंगे। भारत के अन्य सारे अंशों के 'स्वत्वों' के साथ ही साथ हमारा 'स्वत्व' भी जिसमें सुरक्षित रहेगा, उस प्रकार का स्वराज्य जीत लेने के लिये हम लोग सन्नद्ध हो गये हैं। इंगलैण्ड के साथ जूझने के लिये हम इस हेतु से तैयार नहीं हुए हैं कि हमारा एक मालिक हटाया जाके उसके स्थान पर दूसरा मालिक आ डटे; किन्तु इस हेतु से, हमारे अपने घर के हम स्वयं ही मालिक बनें। यही हम हिन्दुओं का ध्येय है। हमारे आत्म समर्पण का तथा हिन्दुत्व का मूल्य देकर प्राप्त होने वाला स्वराज्य तो हिन्दुओं के लिये आत्महत्या के समान ही प्रतीत होता है। वास्तव में तो मुसलमानों को इस बात की सत्यता सुस्पष्ट रूप से प्रतीत होगी, कि पराये अधिराज्य से भारत स्वतन्त्र हो न सका, तो भारत-निवासी मुसलमानों के लिये खुद ही गुलाम बनने के बिना

दूसरा चारा ही नहीं रह जाता, साथ ही साथ जब वे इस बात को भी समझ लेंगे कि हिन्दुओं की सहायता तथा सदिच्छा के बिना हमारा चल नहीं सकता, तब स्वयं वे ही एकता की मांग करने के लिये तैयार होंगे और वह भी हिन्दुओं पर उपकार करने के लिये नहीं, अपितु अपनी ही भलाई के लिये! इस प्रकार जो हिन्दू-मुस्लिम एकता प्रस्थापित होगी, वही कुछ वास्तविक मूल्य तथा महत्त्व रखेगी। बहुत गहरी-गहरी कीमत दे के हिन्दुओं ने इस सम्बन्ध में यही प्रतीति प्राप्त की है कि एकता प्राप्ति का प्रयत्न करना उसे अपने हाथों से गंवाना मात्र है। आगे चलकर तो अब हिन्दू-मुस्लिम-एकता के सम्बन्ध में हिन्दुओं का यही सूत्र-वाक्य रहेगा कि "आओगे तो तुम्हारे साथ, न आओगे तो तुम्हारे बिना, विरोध करोगे तो तुम्हारे विरुद्ध भी, जैसा बन पड़े, हिन्दू राष्ट्र तो अपना भवितव्य निर्माण करेगा ही।"

भारत की मुसलमानेतर अन्य अल्पसंख्या वाली जातियां

भारत की अन्य अल्प संख्या वाली जातियों के सम्बन्ध में हिन्दी राष्ट्र के दृढ़ीकरण के कार्य में, कोई विशेष कठिनाइयां नहीं उपस्थित होने पायेंगी। पारसी लोग तो लगातार अंग्रेजी अधिराज्य के विरुद्ध हिन्दुओं के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर ही काम करते आये हैं। वे धर्मान्ध या सिर फिरे नहीं हैं। महात्मा दादा भाई नवरोजी से लेके सुविख्यात क्रान्तिकारक महिला

कामाबाई जी तक के पारसियों ने अपने हिन्दी देशभक्तों का हाथ बंटाया है। उनके वंश के वास्तविक तारणहार बने हुए इस हिन्दू राष्ट्र के सम्बन्ध में उन्होंने सदिच्छा के बिना किसी भी प्रकार की वृत्ति प्रकट नहीं की है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी वे हमारे सबसे अधिक निकटवर्ती आप्त हैं। हिन्दी क्रिश्चियनों के सम्बन्ध में भी कुछ अल्प अंशों में यही कहा जा सकता है। यद्यपि उन्होंने आज दिन तक चलाये गये राष्ट्रीय झगड़े मे बहुत कम हाथ बंटाया है, तो भी उन्होंने कम से कम ऐसा तो व्यवहार नहीं किया है, जिससे वे हमारे गले में भार स्वरूप बन बैठें। वे कुछ कम धर्मान्ध हैं और राजनीतिक तर्क बुद्धि के आगे सिर झुकाने वाले हैं। ज्यू तो बहुत ही छोटी अल्प संख्या वाले हैं और वे हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरोधी भी नहीं हैं। इससे यह बात निश्चित है कि हमारे ये सारे अल्प संख्या वाले स्वदेश-बांधव हिन्दी राज्य में विश्वासपात्र तथा देशाभिमान-प्रेरित नागरिक ही बनेंगे।

हिन्दुओं पर तथा हिन्दू महासभा पर जो लोग जाति निष्ठता का अभियोग लगाते हैं, उन्हें इस बात की ओर भली भांति ध्यान देना चाहिये, कि हिन्दुओं के सम्बन्ध में उन्हें यह बात दिखाई न देगी कि उन्होंने उक्त अहिन्दू अल्पसंख्या वालों के सामने कभी अपने मित्रत्व की भावनाओं के आदान प्रदान के सम्बन्ध में सौदा ठहराने की मनोवृत्ति प्रकट की हो या स्वदेश-बांधवों के न्यायसंगत प्राप्तव्य स्वत्वों के विरुद्ध किसी प्रकार की खींचपड़ भी की हो।

आंग्ल हिन्दी (ऐंग्लो इण्डियन) जाति के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि उनकी इस समय दिखाई देने वाली धृष्टता तथा प्रचलित राज्य सुधार-विधान (रिफार्म ऐक्ट) के अनुसार मताधिकार में उन्हें मिला हुआ सिंह का हिस्सा, ये बात इंगलैण्ड के इस देश पर रहे हुए वर्चस्व के नष्ट होते ही पलभर में हवा हो जायेंगी। उनकी जन्म-जात राजनीतिक शुद्धबुद्धि शीघ्र ही उन्हें अन्य हिन्दी नागरिकों की पांत में ला रखेगी और यदि ऐसा न भी हो तो भी उन्हें ठीक राह पर लाया जा सकेगा।

अपने ओजस्वी भाषण में सबसे अन्त में वीर सावरकर ने ये शब्द कहे—कौन जानता है? सम्भव है कि कुछ अधिक समय बीत जाने पर भविष्यत् काल में, यदि इस पीढ़ी में नहीं, तो हमारे बाल-बच्चों की अगली पीढ़ी में अपनी इसी हिन्दू महासभा का कोई अधिक भाग्यशाली अध्यक्ष उस समय के उस भावी अधिवेशन के सन्मुख इसी स्थान पर खड़ा होके इस तरह की विजय वार्त्ता उच्च स्वर से घोषित करने में समर्थ होगा कि— "हूण तथा ग्रीक और शक आक्रमणकारियों की गत काल में जो गति हुई थी, उसी प्रकार अब इस देश में ब्रिटिश वर्चस्व का भी कोई चिन्ह नहीं रह गया है। हिन्दू जगत् का ध्वज अत्युच्च हिमाचल के उत्तुंग शिखरों पर ऊंचा उठकर फहरा रहा है और अब हिन्दुस्थान पुनः स्वाधीन तथा हिन्दू जगत् विजयशाली बन गया है।"

नागपुर (सन् १९३८ ई०)

मत विभाजन के सम्बन्ध में तथा अपने इतिहास पर एक दृष्टि डालते हुए श्री सावरकर जी ने कहा :—

हिन्दू राष्ट्र जीवन तत्वों से बढ़ा है, कागज़ की सन्धि से नहीं।

यह स्पष्ट हो गया होगा कि कम से कम ५ हज़ार वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज वैदिक काल में ही हमारे देश के लोगों को धार्मिक, जातीय, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन तत्वों से संगठित कर एक राष्ट्र बना रहे थे जो आज हिन्दू राष्ट्र के नाम से समस्त भारत में फैला हुआ है और सब लोग भारतवर्ष को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानते हैं। चीन को छोड़कर संसार का कोई भी देश इतने अधिक समय की राष्ट्रीय-जीवन की अविच्छिन्नता का दावा नहीं कर सकता जितना हिन्दू राष्ट्र अविच्छिन्न रूप से बढ़ा है। हिन्दूराष्ट्र की वृद्धि कुकुरमुत्ता (अल्प जीवी पौधों) के समान नहीं हुई। हिन्दूराष्ट्र सन्धि करके नहीं बनाया गया है—यह कोई कागज़ के टुकड़े से नहीं बनाया गया है। यह शान्त बैठे रहने को राष्ट्र नहीं बनाया गया था। यह कोई विदेशियों का नया राष्ट्र नहीं बनाया गया है। यह इसी देश की भूमि में बढ़ा है और इसकी जड़ें बहुत गहरी और दूर-दूर तक फैल गई हैं। यह

मुसलमानों को अथवा संसार में किसी भी व्यक्ति को चिढ़ाने के लिये कपोल कल्पित कथा नहीं है। बल्कि यह हिमालय की भांति विशाल और ठोस सत्य है।

इसकी चिन्ता नहीं है कि इसमें कितने ही सम्प्रदाय हैं और कितने ही विभाग हैं, इसके अन्दर कितने ही विरूपता और विभिन्नता से मुक्त हैं। किसी भी राष्ट्र को इसलिये राष्ट्र नहीं कहा जा सकता कि उसमें विभाग नहीं हैं, अथवा विभिन्नता नहीं है किन्तु उनमें परस्पर सजातीयता और सहधर्मता अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि वे निश्चित रूप से संसार के अन्य देशों के लोगों से अधिक परिमाण में भिन्न होते हैं। संसार में राष्ट्रों के जताने की यही एक कसौटी है।

भारतीय राष्ट्र की कल्पना का उदय

हमने हिन्दू राष्ट्र की सजीव तत्वों से वृद्धि और उसके विकास का इतिहास मरहठा साम्राज्य के पतन अर्थात् १८१८ तक का बताया है। बाद में मरहठा साम्राज्य का पतन हो जाने पर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का आगमन हुआ। पंजाब में सिख हिन्दुओं के राज्य का पतन हो जाने से अंग्रेजों को समस्त देश में बेरोक-टोक अपना प्रभुत्व जमाने का मौका मिल गया था। अंग्रेजों ने देखा कि भारत को विजय करने में उन्हें जितने युद्ध करने पड़े वे सब हिन्दू राजाओं से ही करने पड़े। इसलिये ब्रिटिश लोगों को सबसे पहिली यह चिन्ता थी कि हिन्दूराष्ट्र को

किस प्रकार नष्ट करें। अंग्रेजों ने पहिले भारत में ईसाई पादरियों को राजनैतिक सहायता देकर हिन्दुओं को ईसाई बनाने का यत्न किया। परन्तु सन् १८५७ के गदर ने उनकी आंखें खोल दीं कि हिन्दू और मुसलमानों के धर्म पर खुले रूप से हमला करने में क्या भय है, इसलिये उन्होंने ईसाई पादरियों को खुले रूप से सहायता करने का काम बन्द कर दिया। इसके बाद उन्होंने हिन्दूराष्ट्र को समूल नष्ट करने की एक दूसरी नीति सोची कि हिन्दू युवकों में पाश्चात्य शिक्षा, जो राष्ट्रीयता को नाश करने वाली थी, जारी कर दी। हिन्दू युवकों का पहिला दल, जिसने पाश्चात्य शिक्षा बड़े प्रेम से ग्रहण की थी, प्राचीन हिन्दूपन और हिन्दुत्व की भावना से बिलकुल अलग हो गया। उन्हें हिन्दूधर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू इतिहास का कुछ भी ज्ञान न रहा। इसके विपरीत मुस्लिम पाश्चात्य शिक्षा से एक हाथ पीछे रहे और परिणाम स्वरूप उनकी साम्प्रदायिक दृढ़ता नष्ट नहीं हो सकी। ब्रिटिश सरकार प्रसन्न हो रही थी। उन्हें मालूम था कि ऐसी परिस्थितियों में भारत में उनके राजनैतिक प्रभुत्व को किसी से यदि भय हो सकता है तो केवल हिन्दू जाति के राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न होने तथा भारत में हिन्दूपद पादशाही स्थापित करने की भावना से हो सकता है। यह सत्य है कि सन् १८५७ के बाद भी यदि किसी हिन्दू को राजनैतिक दृष्टि से हिन्दू होने का अभिमान होता तो सन्देह से देखा जाता था क्योंकि उसे अपनी हिन्दूपद-पादशाही नष्ट होने का दुःख रहता। इसीलिये जिस प्रकार किसी

क्रान्तिकारी पर दृष्टि रखी जाती है उसी प्रकार उस पर दृष्टि रखी जाती थी। सन् १८५७ के गदर में हार जाने के बाद भी पंजाब में रामसिंह कोका ने तथा महाराष्ट्र में वासुदेव बलवन्त फड़के ने अंग्रेजों को देश से निकाल कर पुनः हिन्दू साम्राज्य प्राप्त करने के लिये सशस्त्र क्रान्ति की थी जिससे अंग्रेजों का सन्देह और भी दृढ़ हो गया था।

राष्ट्रीय के लिये प्रादेशिक एकता कोई अंग नहीं है।

आगे चलकर आपने कहा—कांग्रेस गत ५० वर्षों से मुसलमानों को संयुक्त भारत में मिलाने का प्रयत्न कर रही है, परन्तु फिर भी वह असफल क्यों रही, इसके मुख्य कारण क्या हैं? उनसे यह कहना कि पहिले भारतीय बनो और बाद में मुसलमान? यह बात नहीं है कि मुसलमान भारतीय राष्ट्र न चाहते हों। परन्तु उनकी एकता की कल्पना भारत की राष्ट्रीय एकता—प्रादेशिक एकता पर नहीं है। यदि किसी मुसलमान ने इस सम्बन्ध में अपने हृदय के भाव को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है तो मोपला विद्रोह के नेता अली मुसलियर ने। उसने युद्ध में निर्दयतापूर्वक हजारों स्त्री, पुरुष और बच्चों को जबरदस्ती मुसलमान बनाया और जिन लोगों ने मुसलमान बनने से इन्कार किया उन्हें उसने तलवार के घाट उतार दिया। अपने इस कृत्य का औचित्य बताते हुए उसने कहा था—हिन्दू मुसलमानों की स्थायी एकता इसके सिवाय दूसरे किसी रूप से नहीं हो सकती

कि समस्त हिन्दू मुसलमान बना दिये जायें। जो हिन्दू ऐसा करने से इन्कार करते हैं, वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के शत्रु हैं, अतएव देशद्रोही हैं और कत्ल करने के योग्य हैं। ये शब्द अली मुसलियर ने अपनी मातृभाषा में स्पष्ट रूप से बिना किसी मिलावट के कहे थे। मुहम्मदअली जैसे सफाईबाज मुसलमान इन शब्दों को घुमा फिराकर इस रूप से कहेंगे, जो किसी की समझ में हीं न आवे, परन्तु इन सबका भावार्थ एक ही है। राष्ट्र निर्माण करने के लिये प्रादेशिक एकता नहीं चाहिये किन्तु धार्मिक, सांस्कृतिक और जातीय एकता की आवश्यकता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इस तत्त्व को नहीं समझ सकी और यही कारण है कि इस सम्बन्ध मे अपने मनोरथ में विफल रही।

क्या भारतीय मुसलमानों में यह इच्छा है कि वे हिन्दुओं के साथ एक होकर रहें ?

यही सब प्रश्नों में बड़े से बड़ा प्रश्न है और कांग्रेसी हिन्दू अपने कांग्रेस अधिवेशन के आरम्भ में इस तत्व पर एक मिनट के लिये भी विचार नही करते और न उस समय करते हैं जब कांग्रेस का अधिवेशन मुसलमानो की नमाज के लिये स्थगित किया जाता है। केवल मुस्लिम लीग को साम्प्रदायिक घोषित कर देना मात्र व्यर्थ है। यह कोई समाचार नहीं है। वास्तविक बात तो यह है कि समस्त मुस्लिम जाति ही साम्प्रदायिक भावना से परिपूर्ण है और इसमें कांग्रेसवादी मुसलमान भी सम्मिलित हैं।

यह बात समझनी चाहिये कि वे साम्प्रदायिक क्यों हैं ? कांग्रेसी हिन्दू इस प्रश्न पर आरम्भ से ही विचार करना नहीं चाहते। उन्हें भय है, कि यदि वे इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो उन्हें अपनी प्रादेशिक राष्ट्रीयता को धुन के भूत को धर्मान्धता, मूर्खता कहकर छोड़ना पड़ेगा। आप इसे भले ही धर्मान्धता या मूर्खता कहें परन्तु मुसलमानों के लिये यह धर्मान्धता या मूर्खता एक ठोस तत्व है। आप गालियां देकर उस पर विजय प्राप्त नही कर सकते, बल्कि जिस अवस्था में वह है, उसमें मुकाबला करना चाहिये। मैंने ऊपर जो कारण बताये हैं उनसे मुसलमानों के लिये यह बिलकुल मनुष्योचित बात है, कि वे प्रादेशिक राष्ट्रीयता के प्रति अपनी उदासीनता प्रकट करें। यह बात कांग्रेसवादियों को प्रकट हो गई है। कांग्रेसवादी लोग मुसलमानो के इतिहास, तत्वज्ञान और उनकी राजनीतिक मनोवृत्ति से बिलकुल अजान जान पड़ते हैं।

मुसलमानों की मनोवृत्तियों का चित्रण करते हुए आपने कहा कि—मैं चाहता हूँ कि ब्रिटिश सरकार भी ऊपर बताई हुई बात पर गम्भीर रूप से ध्यान करे और मुसलमानों की हिन्दुओं के विरुद्ध कार्यवाही करने की नीति को कम करा दे। मुस्लिम लीग ने खुले रूप से यह घोषित किया है कि भारत के दो भाग कर दिये जायेंगे एक मुस्लिम फेडरेशन और दूसरा हिन्दू फेडरेशन। हिन्दुओं के मुंह पर थुकवाने के लिये ब्रिटिश सरकार अपनी लाडली बीबी का इतना अधिक विश्वास कर रही है, जरा इन्हें वह

अच्छी तरह विचार ले। अपने इस उद्योग से कहीं ब्रिटिश सरकार के ही मुँह पर थूक न पड़ जाय। 'परन्तु चाहे जो हो, यह काम हमारा नहीं, ब्रिटिश सरकार का है। इसकी चिन्ता ब्रिटिश सरकार को होनी चाहिये। वास्तव में हम हिन्दुओं का काम केवल इतना ही है कि हम निश्चय कर ले कि न तो हम ब्रिटिश सरकार के गुलाम बनेंगे और न मुसलमानों के। हम अपने घर में, हिन्दुओं की भूमि हिन्दुस्थान के स्वयं मालिक बनेंगे।

हमारा तुरन्त क्या कार्यक्रम होना चाहिये।

ऊपर जो कारण बताये गये हैं कि भारतीय मुसलमान भारत में समान रूप से और समान दर्जे से प्रादेशिक नाते से एक राष्ट्र बनाने मे या राजनैतिक एकता बनाने में कभी साथ नहीं देते इसलिये हम हिन्दू संगठनवादियों का कर्त्तव्य है कि अपनी पहली भूल को सुधार लें। हमारा पहिला राजनैतिक अपराध जो हमारे कांग्रेसवादी हिन्दुओं ने अजान से कर डाला और जिसे वे आज भी करते चले आ रहे है, वह यह है कि वे प्रादेशिक राष्ट्र की मृगतृष्णा के पीछे दौड़े चले जा रहे हैं और अपनी इस व्यर्थ की दौड़ में वे उस सजीव हिन्दू राष्ट्र को मार डालना चाहते हैं जो इतने प्रेम से पोषित किया था। हम हिन्दुओं को चाहिये कि जहां से मरहठा और सिख हिन्दू साम्राज्य का पतन हुआ है, वहां से हम राष्ट्रीय जीवन का सूत्र ग्रहण करें। योग्य आहार के अभाव म हिन्दू राष्ट्र को अचानक आघात पहुँचा और उसे आत्म-

विस्मृति को हटाकर उसमें फिर से नवजीवन फूँकना है जिससे उसमें जीवन और वृद्धि के तत्वों की वृद्धि होती रहे। इसलिये हमें बड़ी दृढ़तापूर्वक विघोपित कर देना चाहिये कि सिन्धु नदी से दक्षिण महासागर तक सारा देश हिन्दुओं का है और हम हिन्दुओं का एक राष्ट्र है—वही इसके मालिक हैं। यदि आप भारतीय राष्ट्र कहेंगे तो यह हिन्दूराष्ट्र का पर्य्याय ही समझा जायेगा। हम हिन्दुओं के लिये भारत और हिन्दुस्थान एक ही देश है। हम हिन्दू होने के नाते भारतीय भी हैं और भारतीय होने के कारण हिन्दू हैं।

परन्तु करेंगे कैसे ?

हिन्दू राष्ट्रवादियों को साम्प्रदायिक कहने से न गिड़गिड़ाने का उपदेश करने के बाद आपने कहा कि—अपनी इस हिन्दू नीति से आप सहमत तो अवश्य होंगे, परन्तु आप सबके सामने एक प्रश्न विशेष रूप से आता होगा कि यह सब होगा कैसे ? इस नीति को व्यवहार में कैसे लाया जाये ? यह हिन्दू संगठन दल शक्तिहीन अवस्था में है, इसके सामने अनेक कठिनाइयां हैं, फिर उस शक्तिशाली स्थिति को कैसे प्राप्त किया जाये ? इसका एक ही उत्तर है। आप निराश न हों। अभी एक बड़ा शक्तिशाली अस्त्र हमारे समीप ही है। ठीक दिशा में अपना हाथ फैलाओ और उस शस्त्र को पकड़ लो। बस यहीं से इसका आरम्भ होता है।

कांग्रेस का बहिष्कार करो

राजनीतिक सत्ता के स्थानों पर अपना अधिकार करने के लिये कहते हुए आपने कांग्रेस का बहिष्कार करने का उपदेश दिया और कहा कि कांग्रेस के टिकट वाले उम्मीदवार को अपना वोट न देकर केवल हिन्दू राष्ट्रवादियों को ही अपना वोट दें। क्योंकि ये कांग्रेस वाले यों तो अपने को हिन्दू समझना अपने गौरव के विरुद्ध समझते हैं, परन्तु विधान के अनुसार प्रत्येक उम्मेदवार को अपना धर्म और जाति लिखनी होती है और ये कांग्रेस के उम्मेदवार उस समय राष्ट्रीयता भूलकर चुपचाप अपनी जाति, धर्म आदि लिख देते हैं और अपनी जाति वालों से कहते हैं कि हमें ही मत दीजिये। जिससे ये सबसे अधिक मतों से चुने जा सकें। परन्तु जहां वे चुन लिये गये, फिर वे अपने को हिन्दू समझने में अपना अपमान समझने लगते हैं।

परन्तु यदि आप इन्हें यह स्पष्ट बता दें कि आप ऐसे दुफसला हिन्दुओं को अपना मत नहीं देंगे तो इनमें से ७५ फीसदी राष्ट्र-वादी चुपचाप हिन्दू महासभा के प्रतिज्ञा-पत्र की शपथ ले लेंगे किन्तु धारा सभा के सदस्य अथवा मन्त्री होने का अवसर नहीं जाने देंगे।

ठोस हिन्दू राष्ट्रीय दल की स्थापना करो

आगे चलकर आपने बताया कि कांग्रेस के इस हिन्दू विरोधी और राष्ट्र विरोधी भाव का मुकाबला हिन्दू राष्ट्रीय दल की

स्थापना से हो सकता है। देश के समस्त सनातनी, आर्यसमाजी, हिन्दू संगठनवादी और साधु-संन्यासी संगठन करके यह निश्चय कर लें कि हम कांग्रेस के टिकट वाले उम्मेदवार को अपना वोट नहीं देंगे तो आगामी चुनाव में हिन्दू महासभा का बहुमत हो जायेगा। यदि यह संभव न भी हो तो भी आप अल्प संख्या में ही चुने जायें और सरकार को अपनी मनमानी न करने दें। यदि यह हो जाय तो सारा दृश्य ही बदल जायेगा। देश में हिन्दू राष्ट्र का फिर उदय होगा और प्रत्येक हिन्दू अपना सीना आगे करके चलेगा।

इससे हिन्दू संगठनवादियों! आप आज से हिन्दू राष्ट्र-वादियों को अपना मत देना आरम्भ कर दें और फिर आप देखेंगे कि आपकी शिकायतें धुएँ की भांति उड़ जायेंगी। जब आपको इतना प्राप्त हो जायेगा तब आप एक दिन स्वतन्त्र शक्ति-शाली हिन्दूराष्ट्र का उदय देखेंगे जिसमें उन सब नागरिकों को समान अधिकार दिये जायेंगे जो भारत के सच्चे भारतीय नाग-रिक हैं। जो राजनीतिक सत्तायें हैं उन्हें प्राप्त कर लो। हिन्दू-राष्ट्र का झण्डा ऊँचा करो यह देखो कि भारत सदा हिन्दुस्थान बना रहे। पाकिस्थान या इंगलिस्थान न बनने पाये।



कलकत्ता (सन् १९३९ ई०)

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर ने अपने भाषण में वर्त्तमान समस्यायें—सिन्ध प्रान्त के सक्खर तथा अन्य स्थानों मे मुसलमानों ने हिन्दुओं के रक्त से जो होली खेली, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में सरहदी पठानों ने निरन्तर रूप से हिन्दुओं पर आक्रमण कर उनकी जान व माल को आतंकमय बना रखा है, युक्तप्रान्त, बिहार और बंगाल के कितने ही स्थानों में धर्मान्ध मुसलमानों ने हिन्दू विरोधी दंगे और अत्याचार किये हैं और कांग्रेस-मुस्लिम-लीग और सरकार का समझौता उस समझौते से भी कहीं अधिक हानिकारक होगा जो साम्प्रदायिक समझौते के नाम से प्रसिद्ध है, और सबसे परे यह महायुद्ध जिसने सरकार को यह अवसर दिया है कि भारत की वैधानिक उन्नति को ५० वर्ष पीछे हटाकर फिर वही प्राचीन स्वेच्छाचारी शासन जारी कर दे जो अब तक था—ऐसी हैं जिन पर विस्तार से विचार करना चाहिये, यह कहते हुए अपने भाषण का धाराप्रवाह जारी रखा।

निजाम हैदराबाद का सत्याग्रह आन्दोलन

इस वर्ष की इन समस्त घटनाओं में हिन्दू संगठन की दृष्टि से तथा उस दृष्टि से जो हमें अपनी भावी नीति और कार्यक्रम के लिये सन्देश देती है, वह मुख्य घटना हैदराबाद का सत्याग्रह

है, जिसे हमने निजाम सरकार की हिन्दू विरोधी नीति के विरुद्ध इस वर्ष छः मास तक जारी रखा था। यह यथार्थ में धर्मयुद्ध था, जितना यह धार्मिक था उतना ही यह वीरतापूर्ण भी था। इस युद्ध का ताप हमारे आर्यसमाजी भाइयों ने सहन किया, दस हज़ार से अधिक आर्यबन्धुओं ने इस युद्ध में भाग लिया और ऐसा वीरतापूर्ण युद्ध किया कि उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि इस युग के सर्वश्रेष्ठ हिन्दू संगठन करने वाले महर्षि स्वामी दयानन्द ने यज्ञ की जो अग्नि प्रज्वलित की थी वह दिन प्रति दिन प्रज्वलित होकर बढ़ रही है और उनके जीवन का उद्देश्य अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में नहीं पड़ा है। हिन्दू महासभा की ओर से कम से कम ५ हजार हिन्दुओं ने हिन्दू विरोधी निषेध आज्ञा की अवज्ञा कर सत्याग्रह किया और अदम्य उत्साह से प्रशंसनीय रूप से सत्याग्रह संग्राम को जारी रखा। परन्तु इससे अधिक हिन्दू-विस्तार की दृष्टि से जो उत्साहजनक बात हुई है, वह यह है कि केवल हिन्दू महासभा और आर्यसमाज ही इस सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हुए। यद्यपि ये प्रधान रूप से सम्मिलित अवश्य थे किन्तु इस सत्याग्रह आन्दोलन में व्यापक रूप से समस्त हिन्दू भाइयों ने हृदय से हिन्दू ध्वजा के नीचे ऐसे चाव से भाग लिया था कि यदि इस हिन्दू-विस्तार भावना के सहयोग, सहानुभूति और बलिदान से यह आन्दोलन समस्त भारत में न होता तो हम इसे इतनी सफलता के साथ समाप्त नहीं कर सकते थे। इसके परे कि हिन्दू संगठनवादियों ने अपनी जो मांगें की थीं, उन्हें

निजाम सरकार को विवश होकर स्वीकार करना पड़ा है और मेरे विचार से यह एक ऐसी बात है जिसे हम वास्तव मे स्थायी सफलता के रूप में गिन सकते हैं। इस धर्मयुद्ध में हिन्दू उद्देश्य के लिये यह बात अब सिद्ध हो गई है कि हिन्दुओं में जाति-मतमतान्तर के होते हुए भी हिन्दुत्व अभी तक व्यापक राष्ट्रीय भावना के साथ हमारी नसों में व्याप्त है।

इसके बाद, हैदराबाद सत्याग्रह का, कांग्रेस ने उसे साम्प्रदायिक कहकर विरोध किया और उस विरोध करने के कारण क्या थे, उन पर प्रकाश डालते हुए वीर सावरकर ने दिल्ली के शिव मन्दिर-आन्दोलन पर अपने विचार प्रकट किये :—

दिल्ली का शिव मंदिर

दिल्ली के शिवमन्दिर के लिये हिन्दुओं ने जिस अद्भुत रूप से सत्याग्रह जारी रखा है, उसके प्रति भी अखिल भारतवर्ष को अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करना चाहिये। इससे भी वही चेतावनी मिलती है कि हिन्दू विरोधी आक्रमण के विरुद्ध कांग्रेस न तो हिन्दू हितों की रक्षा करती है, न करेगी और न वह कर ही सकती है। परन्तु दिल्ली के शिवमन्दिर के लिये ये सब कष्ट व्यर्थ नहीं जायेंगे यदि दिल्ली के हिन्दू मतदाता केवल ऐसे ही हिन्दुओं को हिन्दू संगठन के टिकट पर अपना प्रतिनिधित्व करने के लिये भेजें जो कांग्रेस टिकट के गुलाम नहीं बने हैं और जो हिन्दू हितों की रक्षा की प्रतिज्ञा करें। इस आन्दोलन से हिन्दुत्व की

जो भावना जागृत हुई है वह सच्चे शिव के रूप में प्रमाणित होगी।

तदनन्तर आपने हिन्दू आन्दोलन के सिद्धान्त, हिन्दू, हिन्दुत्व और स्वराज्य के अर्थ आदि पर अपना मत प्रकट किया।

हमारी देवभाषा

संस्कृत निष्ठ हिन्दी जो संस्कृत से बनाई गई है और जिसका पोषण संस्कृत भाषा से हो, वह हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा होगी। संस्कृत भाषा संसार की समस्त प्राचीन भाषाओं में सबसे अधिक संस्कृत और सबसे अधिक सम्पन्न होने के अतिरिक्त हम हिन्दुओं के लिये सबसे अधिक पवित्र भी है। हमारे धर्मग्रन्थ, इतिहास, तत्त्वज्ञान और संस्कृति संस्कृत भाषा से इतना अधिक परस्पर मिली हुई है और उसके अन्तर्भूत है कि यही हमारी हिन्दू जाति का वास्तविक मस्तिष्क है। हमारी अधिकांश मातृभाषाओं की यह माता है, इसने उन्हें अपने वक्ष का दूध पिलाया है। आज हिन्दुओं की समस्त भाषायें जो या तो संस्कृत से ही निकली हैं या उसमें दूसरी भाषा मिलाकर बनाई गई है, वे सब तभी उन्नत और समृद्ध हो सकती हैं जब वे संस्कृत से पोषित की जायें। इसलिये प्रत्येक हिन्दू युवक के प्राचीन भाषा के पाठ्यक्रम में संस्कृत भाषा आवश्यक रूप से रहनी चाहिये।

हिन्दी राष्ट्रभाषा

हिन्दी राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में बोलते हुए आपने कहा :—

यहां आपको यह बताना भी बड़ा रोचक होगा कि कांग्रेस के

पूर्व दो सभापतियों ने राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि की समस्या को किस प्रकार हल करने का यत्न किया था। मौलाना अब्दुलकलाम आजाद कहते हैं कि राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी ऐसी हो जो उर्दू के समान हो। परन्तु पण्डित जवाहरलाल नेहरू उनसे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि राष्ट्रभाषा अलीगढ़ स्कूल की या उस्मानियां युनीवर्सिटी की हो—वही २८ करोड़ हिन्दुओं के लिये भी सबसे अधिक उपयुक्त होगा। देशगौरव श्री सुभाषबाबू अपने पूर्वाधिकारी पण्डित जवाहरलाल नेहरू से भी बुद्धिमत्ता में बाजी मार ले गये हैं। कहते हैं कि भारत के लिये सबसे उपयुक्त राष्ट्रलिपि रोमन लिपि होगी। इस प्रकार से कांग्रेस की विचारधारा राष्ट्रीय बातों का विचार करती है। यह कितनी क्रियात्मक हो सकती है, इसके सम्बन्ध में जितना थोड़ा कहा जाय उतना अच्छा है। आपके वसुमती, आनन्द बाजार पत्रिका और समस्त बंगाली पत्र अब प्रतिदिन रोमन लिपि में प्रकाशित होगे। इस नई लिपि में वन्देमातरम् इस प्रकार लिखा जायेगा—

"टोमारो प्रटिमा घडिबे मंडिरे मंडिरे"

और फिर गीता किस बढ़िया रूप में लिखी जायेगी—

"ढर्मक्षेट्रे कुरुक्षेट्रे समवेटा युयुट्सवह"

बस इसी प्रकार समझ लीजिये।

हम हिन्दुओं को तो यूरोप और अरबिस्थ के लोगों को भी नागरी लिपि और हिन्दी भाषा स्वीकार करने के लिये कहना चाहिये। हमारा यह प्रस्ताव उन हठी और आशावादी लोगों को

कुछ भी अक्रियात्मक नहीं समझना चाहिये जो उर्दू को राष्ट्र-भाषा बनाने की कल्पना कर यह समझते हैं कि मरहठे उर्दू पढ़ेंगे और आर्यसमाज के गुरुकुलों में वेदों को रोमन लिपि में पढ़ाया जायेगा।

कांग्रेस मंत्रिमण्डल द्वारा हिन्दुओं पर अन्याय

आपने संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अन्याय पर भी प्रकाश डाला और कहा कि बारा-बंकी में हिन्दुओं को अपने मन्दिरों में आरती करने और शङ्ख बजाने से रोक दिया गया है। कितने ही स्थानों में होली पर हिन्दुओं को हिन्दुओं पर भी रंग फेंकने की मनाही कर दी गई है। जौनपुर में मजिस्ट्रेट पर मुसलमानों ने आक्रमण किया था, परन्तु मुस्लिम लीग के सेक्रेटरी की सिफारिश पर अभियुक्तों को मुक्त कर दिया गया। कांग्रेस सरकार ने मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक नौकरियों में प्रतिनिधित्व दिया है। युक्तप्रान्त में मुसलमानों की जनसंख्या का अनुपात १४ प्रतिशत है, परन्तु वहां की कांग्रेस सरकार ने ४ कलक्टरों में से ३ कलक्टर मुसलमान नियुक्त किये हैं। १३ डिप्टी कलक्टर में से ८ डिप्टी कलक्टर मुसलमान नियुक्त हैं। और भी इसी प्रकार समझिये। युक्तप्रान्त की कांग्रेस सरकार ने जो यह विज्ञप्ति प्रकाशित की है उसे प्रत्येक हिन्दू को अवश्य पढ़ना चाहिये। यह अपने ही सिद्धान्तों का स्वयं खण्डन करने की एक बड़ी योग्यता-

पूर्ण विज्ञप्ति है। यह विज्ञप्ति कांग्रेस सरकार ने गुप्त रूप से केवल मुसलमानों के पास ही भेजी थी, किन्तु कुछ हिन्दू सभा वालों को, जिन्हें देशद्रोही आदि शब्दों से अभिशापित किया जाता है, इस 'राष्ट्रीय' धर्मग्रन्थ की कुछ प्रतियां मिल गई और उन्होंने उसे छापकर वितरण कर दिया।

आगामी दो वर्षों का कार्यक्रम

आगे चलकर आपने भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में कहा—जब तक कोई अचानक ही बात ऐसी न हो जाये और हमें और अधिक कर्त्तव्य कर्म के लिये आह्वान न हो तब तक देश की समस्त हिन्दू सभायें, चाहे वे स्थानीय हो या प्रान्तीय, निम्नलिखित तीन कार्यों को प्रधान रूप से पूरा करने का भरसक यत्न करें।

(१) अस्पृश्यता को मिटा दो।

(२) समस्त यूनिवर्सिटियों, कालेजों और स्कूलों में सैनिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिये जोर डालो और अपने युवकों को नौसेना, वायुयान सेना तथा स्थल सेना में प्रविष्ट कर दो।

(३) जहां तक हो सके वहां तक प्रत्येक हिन्दू मतदाता को इसके लिये तैयार कर लो कि जब चुनाव हो तो वे हिन्दू संगठनवादी उम्मेदवार को ही अपना मत दें जो हिन्दू-हितों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करके जाते हैं। और उन कांग्रेसवादियों को अपना मत कभी न दे जो हिन्दू हितों की रक्षा पूर्ण स्वाधीनता

और साहस से तब तक नहीं कर सकते जब तक वे कांग्रेस के अनुशासन तथा कांग्रेस के टिकट से बँधे हुए हैं।



मदुरा (सन् १९४० ई०)

अपने भाषण में वीर सावरकर ने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू एक सैनिक जाति के रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करें। उन्होंने पूर्ण अहिंसा के सिद्धान्त की निन्दा की तथा उसे हिन्दू हितों के लिये हानिकारक बताया।

युद्ध उद्योग

हिन्दुओं को युद्ध उद्योगों में भाग लेने की प्रेरणा करते हुए सावरकर जी ने कहा—हिन्दुओं का युद्ध के प्रति रुख जाति को सैनिक बनाने तथा देश के औद्योगीकरण की आवश्यकता के अधीन होना चाहिये। यदि हिन्दू फौज नौसेना, वायुसेना या युद्ध सामग्री तैयार करने वाले कारखानों में भरती होने से इन्कार करेंगे तो इसका एकमात्र तात्कालिक फल यही होगा कि मुस्लिम जीने पर चढ़ बैठेंगे और यहां अंग्रेजी गवर्नमेण्ट को दुर्बल बनाने के स्थान में आप देखेंगे कि आपने उन लोगों को बलवान् बना दिया है जो आपको आप ही की भूमि में गुलाम बनाने में किसी से कम नहीं। सावधान करते हुए श्री सावरकर ने कहा—कोई

लीग-कांग्रेस सन्धि हिन्दू महासभा को एक रजामन्द दल बनाये बिना हिन्दू अधिकारों को वेच नहीं सकती और न उन्हें रहन रख सकती है।

पाकिस्तान की मांग

पाकिस्तान की मांग तथा ब्रिटिश सरकार पर मुस्लिमलीग के दावे का जिक्र करते हुए श्री सावरकर जी ने कहा कि—मै उस स्पष्ट रुख की सच्चे दिल से प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता कि जो मि० एमरी ने भारतीय स्वतन्त्रता तथा उनके अविभाजन के वारे में धारण किया है। तथा जिस दृढ़ता से वायसराय ने लीग की कितनी ही हिन्दू विरोधी मांगों को युद्ध कमेटी तथा एक्जेक्टिव कौंसिल के विस्तार के सम्वन्ध मे ठुकरा दिया है।

ब्रिटेन की तानाशाही

पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे प्रमुख कांग्रेस नेताओं की ब्रिटेन से यह मांग कि वह अपने युद्ध उद्देश्यों पर प्रकाश डाले, व्यर्थ मालूम देती है। कारण यह है कि ब्रिटेन दबाव के आधीन है और दूसरी वात यह कि ऐसे उद्देश्यो पर प्रकाश पीतल के समान होगा यदि उन पर अमल न किया जाय। ब्रिटेन भारत को जनतन्त्रात्मक और स्वतन्त्र विधान देकर ऐसा कर सकता था लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया। राजनीति और इतिहास यह वताते है कि कोई विधान या सामाजिक प्रणाली सव हालतों में सर्वहितकारी नहीं हो सकती। जहां तक ब्रिटिश राष्ट्र का अपना हित

है, वह वैयक्तिक स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र का राग अलाप रहा है और उसके साथ बहुत प्रेम रखता है, लेकिन युद्ध की अवस्था में क्या उसने एक ही दिन में अपने जनतन्त्रात्मक विचारों और विधान को तिलांजलि नहीं दे दी और ठोस तानाशाही के पक्ष में वोट दिया ? श्री सावरकर ने कहा कि—'जर्मनी से लड़ो क्योंकि वहां तानाशाही है और अंग्रेजों, फ्रांसीसियों या अमरीकनों से प्रेम करो क्योंकि वे जनतन्त्रवादी हैं' ऐसा कहकर भारतीयों से सहायता मांगना कुछ अर्थ नहीं रखता। हमारे लिये बुद्धिमती नीति यह है और क्रियात्मक राजनीति भी यह मांग करती है कि हम उनसे मित्रता करें जो हमारे देश के हितों के सेवक हों भले ही वह किसी 'वाद' का अनुसरण करते हों ! और उनके साथ तब तक मित्रता कायम रखें जब तक वे हमारे हितकारी हों।

युद्ध प्रयत्नों में

श्री सावरकर जी ने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू युद्ध के अवसर से लाभ उठायें और अपने आपको औद्योगीकरण तथा फौजीकरण के कार्यों में लगा दें। हमें सरकार की उन रियायतों से लाभ उठाना चाहिये जो वह विवश होकर हमें पेश कर रही है। इस समय हमें काफी अवसर मिल रहे हैं जो गत पचास वर्षों में नहीं मिले और सम्भव है कि आगामी पचास वर्षों में प्रोटैस्ट या मांग करने पर भी न मिलते। स्मरण रहे कि ब्रिटिश सरकार ये रियायतें भारतीयों की भलाई के लिये पेश नहीं कर रही बल्कि वह अपनी भलाई के लिये ही दे रही है। हम भी

अंग्रेजों को सहायता देने के ख्याल से युद्ध प्रयत्नों में सम्मिलित नहीं हो रहे बल्कि अपनी भलाई के लिये ही ऐसा कर रहे हैं। ब्रिटेन को सहायता देने में आनाकानी नहीं करते यदि उससे हमारा लाभ होता है।

सत्याग्रह आन्दोलन

कांग्रेस के सत्याग्रह के सम्बन्ध में कांग्रेस सरकारों के काल का जिक्र करते हुए सावरकर जी ने कहा कि वह आदमी जो सदा दूसरों से दबाये जाने से घबराता है, वह सदाचारों से दबाया जाता है। हिन्दू संगठनवादी अपनी राजनैतिक बुद्धि पर विश्वास रखते हैं और हमें आत्मविश्वास है कि हम हर अवस्था में अपनी रक्षा कर सकते हैं। इसलिये हमें यह विचार करना चाहिये कि हम युद्ध की स्थिति से क्या लाभ उठा सकते हैं? हम अपने हितों की रक्षा और समर्थन के लिये क्या उपाय कर सकते हैं और हिन्दू उद्देश्यों की कहां तक उन्नति कर सकते हैं?

सशस्त्र विद्रोह

अपने भाषण को जारी रखते हुए श्री सावरकर ने उन उपायों और साधनों पर प्रकाश डाला जिनके द्वारा भारत स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है। राष्ट्रीय आधार पर के कष्टों पर सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि 'नारे लगाना और जेल जाना' क्या खेल बना रखा है। यह देश के लिये लाभदायक नहीं हो सकता। हां, आगामी चुनाव के लिये एक हथकण्डा कहा जा सकता है। हिन्दू

सभा दो काम करने को तैयार नहीं। यदि इस सत्याग्रह से लाभ देखें तो इसे छेड़ सकती है किन्तु इस समय यह हमारे हितों के लिये घातक होगा।

हिन्दू महासभा की माँगें

अपने भाषण को समाप्त करते हुए श्री सावरकर ने हिन्दू महासभा की मांगों का जिक्र किया, उन्होंने कहा कि भारत को युद्ध के पश्चात् कामनवेल्थ का एक अंग मानने की भारतमन्त्री और वायसराय ने घोषणा कर दी है। हमने भारत के बँटवारे के आन्दोलन का विरोध किया और मांग की कि इसे न माना जाय। मि० एमरी ने इसे भी स्पष्ट कर दिया है। हमारी फौजी मांगों को भी स्वीकार किया जा रहा है। हिन्दू महासभा को सरकार ने हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था मान लिया है। अब केवल एक बात को ब्रिटिश सरकार दुहरा रही है कि भारत के सब दल सम्मिलित हो जायें और तब अपना विधान तैयार करें। इसमें अल्पमत और बहुमत का वह ख्याल नहीं करती। हम ठीक समय पर इस पर भी लड़ेंगे और ब्रिटेन से अपनी मांग स्वीकार करायेंगे। संक्षेप में हमें सत्याग्रह का ख्याल छोड़कर इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये और हिन्दुओं को फौजी शक्ति बढ़ाने के प्रयत्नों में सम्मिलित होना चाहिये।



भागलपुर (सन् १९४१ ई०)

हिन्दू महासभा के इतिहास मे भागलपुर का अधिवेशन स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। इस अधिवेशन पर बिहार की सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया था, इसलिये वीर सावरकर अपने भाषण को स्वयं नहीं पढ़ सके, लेकिन कहा जाता है कि जिला भागलपुर के विभिन्न स्थानों में हिन्दू नेताओं और कार्यकर्त्ताओं ने इसे लाखों लोगों के सामने पढ़ा।

घृणास्पद प्रतिबन्ध

वीर सावरकर ने बिहार सरकार द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध की तीव्र आलोचना करने के बाद कहा कि—मुझे आशा है कि यदि हिन्दुस्थान के विभिन्न भागों से हिन्दू संगठनवादी बड़ी संख्या में एकत्रित हुए और जेल, लाठीचार्ज और दूसरे हर प्रकार के त्याग के लिये तैयार रहे तो महासभा का यह २३वां अधिवेशन सबसे अधिक सफल होगा। मेरा विचार है कि यह भाषण भागलपुर में नहीं पढ़ा जायेगा, फिर समय भी बहुत थोड़ा रह गया है, इसलिये हिन्दू आन्दोलन के पथ-प्रदर्शन के लिये मै कुछ बाते लिखता हूँ।

नेपाल महाराजा के प्रति

नेपाल ही एकमात्र हिन्दू राज्य है। हिन्दुओं के उज्ज्वल अतीत का वह सबसे बड़ा प्रतिनिधि है और वह अतीत से भी

का आन्दोलन और हिन्दुओं में मर्दानापन की जागृति ने हिन्दुस्थान में तबलीग का प्रश्न ही समाप्त कर दिया है। अब यदि कोई अलाउद्दीन या औरंगजेब भी जन्म लेके आये तो वह एक दर्जन हिन्दुओं को भी जबर्दस्ती या धोखे से सदा के लिये पतित नहीं कर सकता। गतवर्ष ढाका के झगड़े में जबर्दस्ती पतन किया गया। कई गांवों में सहस्रों हिन्दू घराने मुसलमान बना दिये गये। मुस्लिम गुण्डों ने समझा कि यह गांव अब सदा के लिये पाकिस्तान में सम्मिलित हो गये। किन्तु ज्यों ही झगड़ा तनिक हल्का पड़ा कि वे पतित हिन्दू झट से शुद्ध हो गये और अब वे मुसलमानों के पहिले से भी अधिक कट्टर विरोधी हो गये हैं। ऐसी बातों से यही प्रकट होता है कि हिन्दुस्थान में मुसलमानों को सदैव अल्पमत में ही रहना है। इसलिये वे अपना राजनैतिक कार्यक्रम भी इसी वास्तविकता को सामने रखकर बनायें। आज इनकी जितनी जनसंख्या है उनके अनुसार गवर्नमेण्ट में या असेम्बलियों में एक सीट भी अधिक मिलने की उन्हें इच्छा न रखनी चाहिये। यदि वे आशा लगाये बैठे हों कि पंजाब और दूसरे प्रान्तों को पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया जाय तो उन्हें यह भी सुन लेना चाहिये कि हिन्दू अफगानिस्तान को हिन्दुस्थान में सम्मिलित करने का अधिकार रखते हैं, जिससे हिन्दू जगत की सीमा ठीक हिन्दूकुश तक पहुँच जाये।

अपने भाषण को जारी रखते हुए वीर सावरकर ने प्रस्तुत कार्यक्रम को पेश करते हुए हिन्दूसभा के चुनाव के कार्यक्रम और हिन्दुओं के सैनिक कार्यक्रम पर जोर दिया।

चुनाव की लड़ाई में हिन्दुत्व भाव

तदनन्तर श्री सावरकर जी ने कहा कि जब तक असेम्बलियों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का ढंग चलता रहेगा, हिन्दुओं के हित वहां सुरक्षित नहीं रह सकते। बशर्ते कि असेम्बलियों में जाने वाले हिन्दू सदस्य हिन्दू महासभाई न हों। हिन्दू महासभा की नींव ही इसलिये डाली गई है कि वह हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता और अखण्डता, जनगणना के अनुपात से प्रतिनिधित्व, योग्यता के अनुसार पब्लिक नौकरियों का बंटवारा, पूजा, भाषा, लिपि आदि की स्वतन्त्रता के लिये तर्क करे और इन अधिकारों को प्राप्त करे। हिन्दुओं के भविष्य का तकाज़ा है कि हिन्दुस्थान की जाति और राज्य इन सिद्धान्तों पर स्थापित किया जाय। हिन्दू महासभा का दावा है कि हिन्दुस्थान के राष्ट्रीय हित और हिन्दुओं के हित में कोई भेद नहीं हो सकता। जो कुछ हमारा अधिकार है उससे हम एक इंच पीछे हटने को तैयार नहीं और जनसंख्या के अनुपात से अधिक रत्ती भर भी अहिन्दू अल्पमत को देने को तैयार नहीं। कांग्रेस, फार्वर्ड ब्लाक और दूसरी संस्थाओं ने इस सच्ची राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को तोड़ने का पाप किया है। वह भौगोलिक राष्ट्रीयता के फेर में पड़ी हुई हैं। उन्होंने अपने सामने आदर्श रख लिया है कि देशभक्ति की मौलिक आवश्यकताओं के लिये हिन्दुओं के अधिकारों की पीठ पर छुरी भोंकी जाय। अपने आपको साम्प्रदायिकता से अलग प्रकट करने के लिये इन संस्थाओं के हिन्दू नेता और कार्यकर्त्ता अपने आपको हिन्दू कहने

में लज्जा अनुभव करते हैं, लेकिन साम्प्रदायिक चुनाव में भाग लेकर सदस्य बनने में उन्हें कोई लज्जा नहीं आती। साम्प्रदायिक चुनाव में भाग लेकर वे एक समय जाति सेवा से गद्दारी करते हैं और हिन्दू वोटरों से धोखेबाजी। यदि कांग्रेस और फार्वर्ड ब्लाक आदि को हिन्दुओं की प्रतिनिधि संस्था कहलाने में लज्जा लगती है तो उन्हें केवल हिन्दू सीटों के लिये ही चुनाव न लड़ना चाहिये अपितु दूसरी जातियों की सीटों के लिये भी हाथ पांव मारने चाहियें।

हिन्दुओं को युद्धप्रिय बनाने का कार्यक्रम

हिन्दुओं को युद्धप्रिय बनाने का कार्यक्रम जारी रखा जाय क्योंकि युद्ध अब भारत के द्वार तक आ पहुँचा है। इसलिये इस नीति पर अब शीघ्रता से अमल किया जाय। युद्ध में जापान के आने से इस नीति पर कोई प्रभाव न होना चाहिये। महासभा का विश्वास है कि इस प्रकार इंगलैण्ड, जर्मनी, इटली, अमरीका और रूस भी दूसरों के लिये नहीं अपितु अपने जातीय हित के लिये लड़ रहे हैं। इसी प्रकार जापान भी अपने लिये लड़ रहा है। तब हिन्दुस्थान भी अपने स्वार्थ के लिये ऐसा करेगा। हमारे जातीय हित इसमें हैं कि जहां तक हिन्दुस्थान की सुरक्षा का प्रश्न है हम भारत सरकार के युद्ध प्रयत्नों में सहयोग से काम लेते हुए स्थल, समुद्र और वायुसेना में अधिक से अधिक संख्या में भर्ती हों और युद्धसामग्री के कारखानों में काम करें।



कानपुर (सन् १९४२ ई०)

अपने भाषण के प्रारम्भ में हिन्दू महासभा की प्रगति पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री सावरकर जी ने कहा—

हिन्दू महासभा की प्रगति

इस वर्ष का श्रीगणेश भागलपुर के विख्यात निःशस्त्र प्रतिकार से हुआ। इस युद्ध का सबसे महत्वपूर्ण अंग यह है कि इससे हममें यह आत्मविश्वास उत्पन्न हो गया है कि आज भी हिन्दू जनता अवसर आने पर हिन्दुत्व की रक्षा के लिये. जाति, धर्म, सम्प्रदाय और मत का भेदभाव भुलाकर एक संयुक्त मोर्चा बना सकती है। वह हिन्दुत्व पक्षपातिनी भावना जिसे पुनरुज्जीवित करने में हिन्दू सभा वर्षों से प्रयत्नशील रही है आज हमारे सौभाग्य से इतनी शक्तिशालिनी हो गई है कि वह वर्षों से उपेक्षित होने पर भी हिन्दू विरोधी शक्तियों का न केवल सामना ही कर सकती है अपितु उन्हें नीचा दिखाने का अदम्य तेज भी इसमें विद्यमान है।

भागलपुर मोर्चे के कुछ ही मास बाद फर्वरी में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा समिति की बैठक लखनऊ में हुई। मुसलमानों द्वारा प्रदर्शित दंगाई मनोवृत्ति के होते हुए भी यह बैठक सफलतापूर्वक समाप्त हो गई।

इसके बाद मार्च के अन्त में भारत में 'क्रिप्स मिशन' का आगमन हुआ। ब्रिटिश सरकार की वर्षों से यह दृढ़ धारणा थी कि कांग्रेस हिन्दुओं का और मुस्लिम लीग मुसलमानों का तथा दोनों मिलकर भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती हैं, परन्तु इसी बीच हिन्दू महासभा ने देश में एक नई राजनैतिक शक्ति के रूप में इस दृढ़ता से पैर जमाये कि क्रिप्स मिशन के समय ब्रिटिश सरकार को इस भारत की तीन शक्तिशाली अखिल भारतीय संस्थाओं में हिन्दू राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रमुख संस्था मानने के लिये बाध्य होना पड़ा।

महासभा की जागरूकता

कांग्रेस, मुस्लिम दबाव के सन्मुख निरन्तर झुकती गई और यहां तक कि उसने यह वचन भी दे दिया कि यदि मुसलमान हठ ही करेंगे तो वह प्रान्तों के पृथक्करण का विरोध नहीं करेगी। मानो कि अभी तक मुसलमानों ने कांग्रेस को झुकाने के लिये पर्याप्त हठ प्रदर्शित ही न किया हो! श्री राजगोपालाचार्य तो पाकिस्तानी भावना के प्रतीक ही बन गये। उन्होंने भोले-भाले हिन्दुओं को अपने इस नवीन 'पाकिस्तान' मत की दीक्षा देने के लिये समस्त भारत का परिभ्रमण किया और इस महामारी को सर्वत्र फैलाने लगे। परन्तु महासभावादी बड़े जागरूक थे और उन्होंने सर्वत्र दौरा किया और हर जगह राजगोपालाचार्य के पैर उखाड़ दिये।

अगस्त आन्दोलन

अपने भाषण में अगस्त-आन्दोलन का जिक्र करते हुए सावरकर जी ने कहा—कि अचानक महात्मा गांधी समेत हजारों देशभक्त कांग्रेस नेता गिरफ्तार कर लिये गये और उसके बाद सारे देश में असन्तोष की लहर दौड़ गई। सरकार ने उसका दमन किया। फ़लस्वरूप अशान्त वातावरण पैदा हो गया है। आज हमारे हजारों हिन्दू भाई—कांग्रेसी और गैर कांग्रेसी मृत्यु से लेकर नजरबन्दी की असीम यातना भुगत चुके हैं और भोग रहे हैं। वे हमारे भाई हैं। देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने जो कष्ट सहे हैं उसके लिये हम कृतज्ञतापूर्वक उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार के सन्तोष में जो सिद्धान्तविहीन गुण्डापन हुआ है उसके साथ हमारी कोई सहानुभूति नहीं है।

पाकिस्तानी योजना का विरोध

इसके बाद पाकिस्तानी योजना को रोकने के लिये और अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये श्री सावरकर जी ने निम्न बातों की ओर निर्देश किया—

(१) हिन्दुओं को हिन्दू सैनिककरण-आन्दोलन सौ गुणा बढ़ाकर नौसेना, हवाई सेना तथा गोला बारूद के कारखानों में अधिक संख्या में घुस जाना चाहिये।

(२) वायसराय की कार्यकारिणी, मन्त्रिमण्डल, लेजिसलेचर्स और रक्षाविभाग इत्यादि की राजनैतिक शक्ति अपने अधिकार में ले लो।

(३) अपने संगठन की शक्ति को ऊँचे नारों में मत भूल जाओ।

(४) जहां कहीं भी हिन्दुओं के नागरिक अधिकारों पर कुठाराघात होता हो वहां सब हिन्दू एक हो जाओ।

(५) तमाम ताल्लुकों तथा गांवों में हिन्दू सभा की शाखायें स्थापित की जाये।

(६) यदि हिन्दू पांच वर्ष में अछूतपन को हिन्दुओं से दूर कर दें तो यह युद्धक्षेत्र में एक महान् विजय से कम महत्वपूर्ण घटना न होगी।



अमृतसर (सन् १९४३ ई०)

इस वर्ष के लिये भी हमारे वीर शिरोमणि स्वातन्त्र्य वीर सावरकर जी ही सभापति चुने गयें थे। किन्तु अधिवेशन के अवसर पर आप बीमार होने के कारण अमृतसर न पधार सके और सभापति का आसन हिन्दू महासभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने ग्रहण किया। इसलिये सावरकर जी का भाषण इस अधिवेशन मे न हो सका।

